॥ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ॥

रस विवेचनम्

सम्पादक :

श्रीहरिदास शास्त्री

संस्थापकाध्यक्ष : श्रीहरिदास शास्त्री गोसेवा संस्थान

श्रीहरिदास निवास

पुराना कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) उ० प्र०
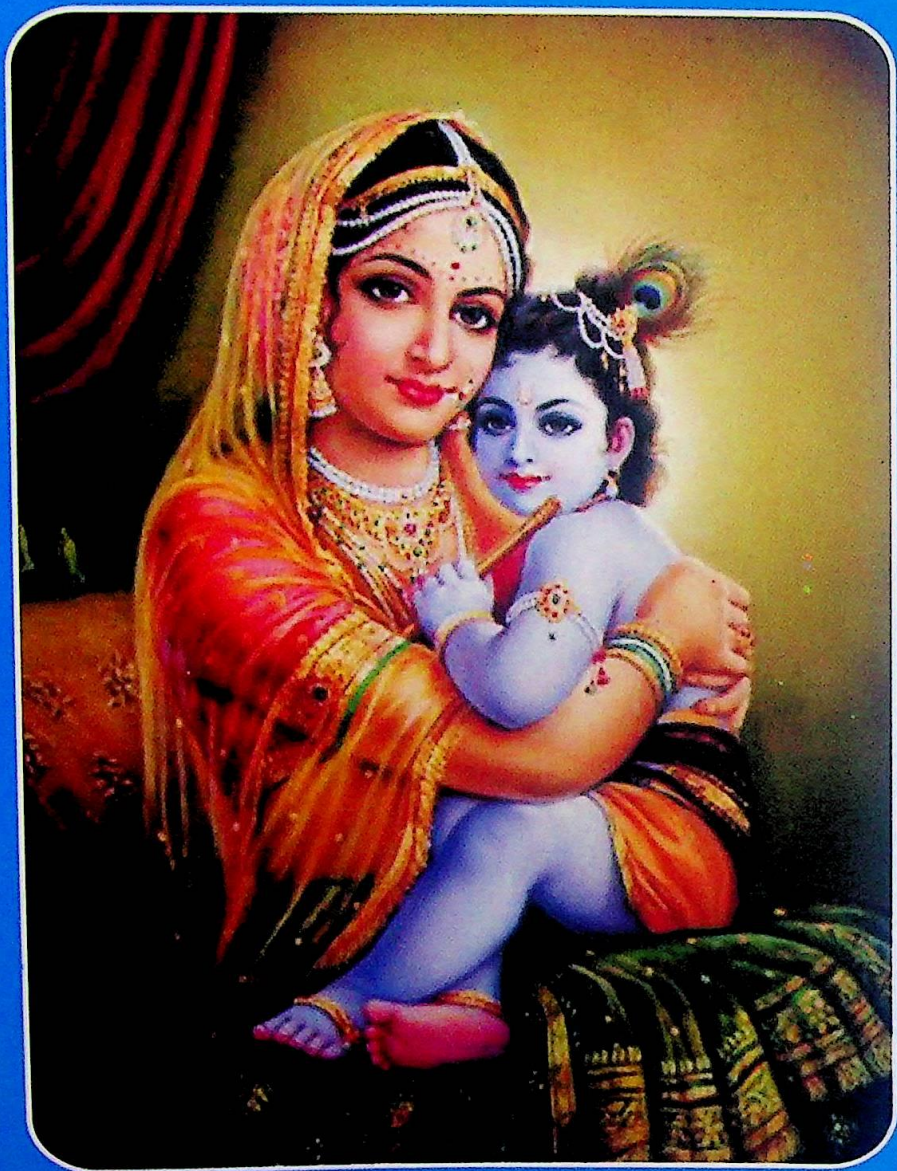
❖ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ❖

रस विवेचनम्

श्रीवृन्दावनधामवास्तव्येन
न्याय-वैशेषिकशास्त्रि, न्यायाचार्य, काव्य, व्याकरण
सांख्य, मीमांसा, वेदान्त, तर्क, तर्क, न्याय, वैष्णवदर्शनतीर्थ,
विद्यारत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन
श्रीहरिदासशास्त्रिणा सम्पादितम्।

मुद्रक :
श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस
श्रीहरिदास निवास, पुरानी कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) उ.प्र.

प्रकाशक :

श्रीहरिदास शास्त्री

संस्थापकाध्यक्ष :

श्रीहरिदास शास्त्री गोसेवा संस्थान

श्रीहरिदास निवास, पुरानी कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) उ. प्र.

फोन : ०५६५-३२०२३२२, ३२०२३२५

प्रकाशन तिथि :

गुरु पूर्णिमा

सम्वत् २०६५, श्रीगौरांगाब्द : ५२४

प्रथमसंस्करणम्

प्रकाशन सहयोग :

५०) रुपया मात्र

मुद्रक :

श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस

(श्रीहरिदास निवास)

पुरानी कालीदह, वृन्दावन (मथुरा) उ. प्र.

॥ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ॥

रस विवेचनम्

ग्राम्य रस विघाताय भगवद्रसदायिने।
अज्ञान ध्वान्त नाशाय गुरवे बुद्धि दायिने॥

"रस्यते आस्वाद्यतेऽसौ रसः" आस्वादन को रस कहते हैं। श्रुति भी इस प्रकार है, **"रसो वै सः"**, **"रस ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति"**। परतत्व ही रस स्वरूप है, जिसको प्राप्तकर मनुष्य आनन्दित होता है। रस को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है। अतएव ब्रह्मस्वरूप रस को ही साहित्यकारगण विभिन्न दृष्टि से वर्णन करते हैं।

विभाव अनुभाव सात्विक सञ्चारि के संयोग से रस निष्पत्ति होती है। नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने कहा है। इसको अवलम्बन करके ही काव्यशास्त्र एवं अलङ्कारशास्त्र के विद्वानों ने रस का वर्णन किया है। इससे प्रतीत होता है कि रस शृङ्गार वीर करुण अद्भुत हास्य भयानक वीभत्स रौद्र शान्त भेद से नौ प्रकार हैं। विभाव अनुभाव सात्विक सञ्चारि के सम्मिलन से रस होता है, यह चिदानन्द स्वरूप है।

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहभयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेत्येकमष्टौ प्रोक्ता शमोऽपि च॥

रति हास्य शोक क्रोध उत्साह भय जुगुप्सा विस्मय एवं शम आठ प्रकार का मतान्तर में रस कहा गया है। इस प्रकार नौ स्थायिभाव हैं। निर्वेद प्रभृति तैंतीस व्यभिचारि को भी भाव कहते हैं।

सञ्चारिणः प्रधानानि देवादि विषया रतिः।
उद्बुद्ध मात्रा स्थायी च भावइत्यभिधीयते॥

इसमें रसाभास भावाभास दुष्टभाव होते हैं। भावशान्ति, भावसन्धि होती है। भाव के प्रशमन को भावशान्ति कहते हैं, भाव के उदय को भावोदय। समान भावद्वय के युगपद् आस्वादन को भावसन्धि कहते हैं। निरवच्छिन्न रूप से भावद्वय का आस्वादन होने पर भावशावल्य होता है। रस का आस्वादन सहृदय व्यक्ति में होता है। यह भी असंलक्ष्य क्रम ध्वनि से एवं निष्पादित अन्य पर वाच्य ध्वनि से होता है।

"रस्यते आस्वाद्यते रसः" इस प्रकार कथन से प्रतीत होता है, चर्वणा रूप आस्वादन प्राप्त होकर स्थायिभाव रस होता है। इसमें कमलशतपत्रबेध न्याय से क्रम होने पर भी क्रम की प्रतीति नहीं होती है। इसका लक्षण इस प्रकार है–

वाच्य वाचक चारुत्व हेतूनां विविधात्मनाम्।
रसादिपरता यत्र सदैव विषयो मतः॥

जहाँ पर रस भाव तदाभास भाव प्रशम भावोदय भावसन्धि भावशबलता प्रधान होकर व्यङ्गार्थ को पुष्ट करके शब्दार्थ अलङ्कार होता है। गुण समूह ध्वनि की अपेक्षा गौण होते हैं वहाँ पर असंलक्ष्य क्रम व्यङ्ग रसादि ध्वनि कहते हैं। इस प्रकार शब्दार्थ अलङ्कार को पुष्ट करते हुए प्रधान रूप से प्रतीति का विषय रस होने पर असंलक्ष्य क्रम व्यङ्ग ध्वनि का उदाहरण होता है।

रस किस प्रकार होता है– स्थायी भाव रस होता है। विभावादि के संयोग से सहृदय व्यक्ति के आविर्भूत है। ललित काव्य का श्रवण से, मेघ-मयूर प्रभृति का साजात्य का दर्शन से, पूर्व ममतायुक्त व्यक्ति का स्मरण होने पर अन्य चिन्ता रहित चित्त में जो निरवच्छिन्न आस्वादित होता है वह रस है। ममत्व का निरन्तर आस्वादन ही रस है। कथित है–

"व्यक्त स तैर्विभावाद्यैः स्थायिभावो रसः स्मृतः।
इति परमाचार्यस्याभिनवगुप्तस्याभिमतमेतत्॥"

परमाचार्य अभिनवगुप्त का मत इस प्रकार है। विभावादि के सम्मिलन से स्थायिभाव ममत्व आस्वादित होकर वासनाक्रान्त सहृदय में रस होता है।

कहने का अभिप्राय इस प्रकार है–

जिस समय सहृदय सामाजिक व्यक्ति सुललित काव्य का श्रवण करता

है, ममत्व का अनुकूल सुललित रचनावलि संकलित नाटक देखता है, उस समय सहृदय के हृदय में वर्णित पात्र चन्द्रिका अश्रुपात प्रभृति के चिन्ता के द्वारा हृदय में प्रविष्ट होता है, चिन्ता एवं ज्ञान के द्वारा यह कार्य समान होता है, यह व्यक्ति विशेष का चरित्र होने पर भी सहृदय सामाजिक का हृदय एकाकार होता है। यह आस्वादन है। इसको रस कहते हैं, विभाव अनुभाव सात्विक व्यभिचारि सम्मिलन से स्थायिभाव को रस कहते हैं। पहले से सञ्चित वासनारूप रत्यादि ही रस होता है।

"व्यक्त स तैर्विभावाद्यैः स्थायिभावो रसः स्मृतः।
इति परमाचार्यस्याभिनवगुप्तस्याभिमतमेतत्॥"

इसका विवरण इस प्रकार है– जिस समय सहृदय सामाजिक श्रव्य काव्य का श्रवण करते हैं उस उस रस के अनुकूल सुललित रचना संवलित दृश्य काव्य नाटक आदि का दर्शन करते हैं, उस समय उस उस में वर्णित कार्य कारण सहकारि युक्त उन उन नायकगत स्थायिभाव का आलम्बन उद्दीपन रूप से किंवा कारणरूप से प्रसिद्ध, नाटक प्रभृति, चन्द्रिका प्रभृति, अश्रुपात प्रभृति तथा व्यभिचार शब्द से कथित सञ्चारि भाव समूह, चिन्ता प्रभृति का प्रवेश सहृदय के हृदय में ज्ञान के द्वारा प्रविष्ट होते हैं। उस समय व्यक्तिगत रूप से प्रसिद्ध होने पर भी धर्म समूह सहृदय सामाजिक के हृदय में प्रविष्ट होते हैं। कारण कार्य सहकारि कारण को विभाव अनुभाव सञ्चारि भाव शब्द से कहते हैं।

उक्त विभावनादि मिलित होकर अलौकिक व्यञ्जना उत्पत्ति होती है। यह व्यञ्जना व्यापार सामाजिक का आनन्ददायक अज्ञान को दूर करता है। अज्ञान दूर होने पर सहृदय का परिमित व्यक्तित्व निज धर्म का विलय हो जाता है। उस समय सामाजिक के आत्मानन्द के साथ अनुभूत प्राक्तन संस्कार रुप से, वासना रूप से हृदय में अवस्थित रत्यादि ममत्वादि स्थायिभाव ही रस होता है। इस प्रकार विभावादि रत्यादि स्थायिभाव का ज्ञान निवर्त होने पर आनन्दमय चैतन्यस्वरूप उन सबको एवं निज स्वरूप का प्रकाश करता है। जिस प्रकार पात्र के द्वारा आच्छादित दीप आच्छादन विदूरित होने पर अपने को एवं अपर वस्तु समूह को प्रकाश करता है। उस प्रकार का घन परमानन्द का प्रकाश समुज्ज्वल होता है। सूर्य किरण प्राप्तकर कमल कोरक जिस प्रकार विकसित होता है, उस प्रकार प्रिय के सम्बन्ध से अन्तरात्मा प्रफुल्लित होती है, इसको रस कहते हैं।

आत्म चैतन्य द्रवीभूत होकर स्थायीभाव रत्यादि के साथ मिलित होकर अभिन्नरूप से आनन्दांशमात्र का अनुभव करता है। पृथक रूप से विभावादि का अनुभव नहीं होता है। इसमें आवरण भङ्ग की कल्पना नहीं करनी पड़ती है। व्यञ्जनावृत्ति के द्वारा सहृदय में उद्‌दृक्त विभावादि की चर्वणा से स्थायिभाव युक्त स्वरूपानन्दाकार चित्तवृत्ति का उदय होता है। उस प्रकार चित्तवृत्ति को रस कहते हैं। योगशास्त्र में इस प्रकार चित्तवृत्ति को सविकल्पक समाधि के समकक्ष मानते हैं। निरवच्छिन्न ममता का विषय का अनुभव होने से यह अलौकिक है।

रसास्वाद जनित रसचर्वणा जनित सहृदय के द्वारा अनुभूत आनन्द लौकिक सुखान्तर के समान नहीं होता है। अद्वय वेदान्त के मत में आत्म अतिरिक्त सद्वस्तु कुछ नहीं है।

ज्ञान का विषय बाहर के वस्तु समूह प्रकाशन कारण समूह के द्वारा आत्मा करती रहती है। किन्तु अन्तःकरण धर्म का प्रकाशन साक्षात् आत्मा ही करती है। यहाँ अन्तःकरण संयोग की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार रस के प्रसङ्ग में भी प्रथमतः व्यञ्जनावृत्ति से आत्मा की अज्ञानता विदूरित होती है, पश्चात् आत्मचैतन्य विभावादि युक्त स्थायिभाव अन्तःकरण धर्म को प्रकाश करता है। इससे ही इसको साक्षि भास्य आत्मप्रकाश्य कहा जाता है।

इस रीति से विभावादि साक्षि भास्य होते हैं। जिस प्रकार स्वप्न में विभिन्न प्रकार वस्तु देखी जाती है, जाग्रद अवस्था में भी सीपी में रजत बुद्धि होती है इसको साक्षि भास्य कहते हैं। उस प्रकार भावनामय बस्तुओं का साधारणीकरण नियम से विभावादि का साक्षि भास्यत्व होने में दोष नहीं है। विरोधाभास भी नहीं है।

इस रीति से अभिनवगुप्त, मम्मटाचार्य प्रभृति के सिद्धान्त से ' भग्नावरण चिद्विशिष्ट रत्यादि स्थायिभाव रस है, का समन्वय होता है।

इस प्रकार रत्यादि स्थायिरूप रस का चैतन्य से भिन्न होने पर **"रसो वै सः"** चैतन्य से अभेद प्रतिपादक श्रुति का विरोध होता है। इसका समाधान इस प्रकार है–

पण्डितराज जगन्नाथ के मत में रत्याद्यवच्छिन्न भग्नावरण चैतन्य ही रस है। अर्थात् रत्यादि विषयक भग्नावरण चैतन्य ही रस है, चैतन्य विषयीभूत रत्यादि रस नहीं है। **"रसो वै सः"** श्रुति के साथ विरोध होता है।

यहाँ पर विचार इस प्रकार है। पण्डितराज जगन्नाथ महोदय ने रस विचार प्रसंग में अभिनवगुप्त का मत **"रसो वै सः"** का अनुमोदन किया है। इस श्रुति का अर्थ **'रस्यते आस्वाद्यते रसः'** इस रीति से ब्रह्म का आनन्दरूपता स्थापित होती है। अभिनवगुप्त ने रस को आनन्दरूप माना है। इसलिए रस एवं ब्रह्म का एकीकरण होना स्वाभाविक है। किन्तु रस एवं ब्रह्म का साक्षात्कार में भेद सुष्पष्ट है। ब्रह्म साक्षात् के लिए विषय सम्बलित श्रवणादि आवश्यक है। रसास्वाद में विभावादि सम्बलित विशिष्ट रस विषयक व्यञ्जना की आवश्यकता है। भेद स्वीकार करने पर **"ब्रह्मैव रसः" "रसो वै सः"** अभेद प्रतिपादक श्रुति का विरोध होता है। इसका समाधान इस प्रकार है। **"आदित्यो यूपः"** यहाँ पर साध्य में जिस प्रकार तात्पर्य है, उस प्रकार यहाँ पर भी साध्य आनन्द में ही श्रुति का तात्पर्य है। निष्कर्ष यह होता है–

(१) भग्नावरण चिद्विशिष्ट रत्यादिः स्थायिभावो रसः।
(२) रत्याद्यवच्छिन्न भग्नावरण चिदेव रसः।

भग्नावरण चिद्विशिष्ट स्थायिभाव रस है। अपर मत में रत्यादि युक्त भग्नावरण चिद्वस्तु ही रस है। मतद्वय में चित् अंश को लेकर रस का नित्यत्व स्थापित होता है, एवं स्वप्रकाशत्व भी। स्थायिभाव को लेकर अनित्यत्व एवं अपर के द्वारा प्रकाश्यत्व होता है।

कह सकते हैं– रस चर्वणा में सुख होता है, इसमें प्रमाण क्या है? कह सकते हैं– समाधि अवस्था में सुख होता है, इसमें प्रमाण क्या है? दोनों प्रश्न एक प्रकार हैं। बुद्धिग्राह्य अतीन्द्रिय आत्यन्तिक सुख समाधि में होता है, इसमें शब्द ही प्रमाण है। रस में सुख होता है, इसमें भी श्रुति प्रमाण है। **"रसो वै सः", "रस ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति"** प्रमाण युगल के द्वारा प्रमाणित हुआ कि सुख सहृदय के द्वारा अनुभूत एवं प्रत्यक्ष है।

काव्य एवं नाट्य में कवि के द्वारा प्रकाशित विभाव अनुभाव सात्विक व्यभिचारि प्रभृति को व्यञ्जना वृत्ति के द्वारा नायक-नायिकागत भाव का ग्रहण होता है। अनन्तर सहृदय के उल्लसित भावना विशेष के माहात्म्य से कल्पित नायक-नायिका के द्वारा आच्छादित ज्ञानधारा होने पर साधारणीकरण न्याय से सुखानुभव सहृदय सामाजिक के हृदय में होता है। शुक्ति में रजत भान के तरह यह अनिर्वचनीय साक्षि भास्य होता है।

विभाव अनुभाव सञ्चारि-कारण कार्य-सहचारि ज्ञान के पश्चात् व्यञ्जनावृत्ति के द्वारा नायक-नायिका के भाव का ज्ञान होता है। उसके बाद सहृदय सामाजिक का हृदय नायक के साथ एकीकरण हो जाता है। इसके बाद धीरे-धीरे परिपाक अवस्था को प्राप्तकर भावनाविशेष रूप दोष के द्वारा अर्थात् मानसिक अवस्था विशेष के द्वारा सुखानुभव होता है। पुनः पुनः श्रवण करने से तद्भावभावित अन्तःकरण होता है। उस समय सहृदय सामाजिक नायक के साथ सामाजिक अपने को अभिन्न मानता है, नायिका में भी अपनापन होता है। मम्मट प्रभृति का यह मत है। पण्डितराज जगन्नाथ इसको स्वीकार नहीं करते हैं। उनके मत में शब्द से गृहीत नायक-नायिका के साथ अभेद बोध सम्भव नहीं है, किन्तु दोष कल्पना करना आवश्यक है। इस रीति से पण्डितराज रस को अनित्य मानते हैं। कारण दोष का नाश होने पर इसका नाश हो जाता है।

विशेषकर यह 'रस' यथार्थरूप से न व्यङ्ग्य है, न वर्णनीय है। किन्तु रस उत्पत्ति के पहले व्यञ्जनावृत्ति के द्वारा नायक-नायिका के भाव के साथ जो अभेद बुद्धि थी वह दोष कारण हुई। इस दोष से ही अपने के साथ अभेद बुद्धि हुई। इसलिए रस को व्यङ्ग्य कहना समीचीन है। इस मत में रस व्यञ्जनावृत्ति लभ्य नहीं है। किन्तु काव्य व्यापार जन्य है, काव्यव्यापारजन्य भावनाव्यापारजन्य रस है।

रस व्यङ्ग्य भी नहीं अनिर्वचनीय भी नहीं किन्तु नायक नायिका के साथ भ्रमात्मक अभेद बुद्धि होती है। मनः कल्पित अभेद ज्ञान ही रस है। यह ज्ञान तीन प्रकार का होता है–

(१) नायक युक्त नायिका विषयक रतिमान् मैं हूँ।
(२) नायिका युक्त नायक विषयक रतिमान् मैं हूँ।
(३) मैं नायक हूँ, नायिका विषयक रतिमान् हूँ।

रस विषयक मतभेद इस प्रकार हैं–

(१) अनुकरणकारी नट में आरोपित होता है 'रस'।
(२) अनुकरणकारी नट में अनुमान रस का होता है।
(३) विभावादि समूह ही रस हैं।
(४) विभाव अनुभाव व्यभिचारी के द्वारा चमत्कार प्राप्त ही रस है।
(५) भाव्यमान विभाव ही रस है।

(६) भाव्यमान अनुभाव ही रस है।

(७) भाव्यमान व्यभिचारी रसरूप से परिणत होता है।

यह सब मत प्राचीन-नवीन मत में निर्दुष्ट नहीं है।

इस विषय में आलङ्कारिकगण एकमत नहीं हैं। शास्त्रकार भी इस सत्य को स्वीकार नहीं करते हैं। जिसके मत में रस सत्ता स्वीकृत है, उसके मत में भी श्रव्य दृश्य काव्य भेद से अनेक भेद हैं। रसोत्पत्ति प्रक्रिया, रससिद्धि प्रक्रिया में एकमत नहीं है। निःसन्देह रस एक महान विषय है। भरत मुनि ने कहा है **"रसना चर्वणादपि"** रस अथर्ववेद से गृहीत हुआ है। वेद से ही रसोदय होता है। वेद प्रतिपादित होने के कारण इसका विचार करना आवश्यक है। समग्र सृष्टि में परम मनोहर अनुपम एक वस्तु है। जिसके सम्बन्ध में परमब्रह्म की आनन्दमयी वृत्ति का प्रकाश होता है। यह प्रकृति सत्व रज तम आदि है। इससे सृष्टि आनन्दमयी प्रतीत होती है। यह सत्य है। इसलिए कविकुल गुरु कालिदास ने कहा है –

"त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं मानारसं वर्त्तते" अर्थात् सत्व रज स्तम त्रिगुणात्मिका सृष्टि का वर्णन कविगण रसमयीरूप से करते हैं।

पाठ्य दृश्य श्रव्यरूप सृष्टि मधुभोजः प्रसादात्मक गुणत्रयवती रसवती होती है। सब प्राणियों की प्रवृत्ति सुख के लिए होती है। अर्थात् कीट पतंग से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सुखानन्द रस का आस्वादन करने के लिए प्रयत्न करते हैं। इसलिए भरत मुनि ने उत्तम कहा है –

"लोकवृत्तानुकरणं नाट्यं एतन्मया कृतम्"

लोकवृत्तानुकरणनाट्यशास्त्र का वर्णन मैने किया है।

वस्तुतः सुख प्राप्ति के लिए प्राणिमात्र की प्रवृत्ति होती है। यह स्वाभाविक है। सुख पूर्वक जन्म ग्रहण, सुख पूर्वक भरण पोषण, सुख पूर्वक विलय प्राप्त करने के लिए स्वाभाविक प्रवृत्ति प्राणियों की होती है। प्राणियों का स्वभाव सुख स्वरूप ही है, इसमें सन्देह नहीं है। सुख भिन्न अपर वस्तुओं के प्रति स्वाभाविक जिज्ञासा होती है, यह कैसे हुआ, कैसे विनष्ट हुआ? किन्तु सुख के विषय में जिज्ञासा नहीं होती है। इसलिए सुख ही जीवन का परम लाभ है। लौकिक पारलौकिक भेद से सुख दो प्रकार हैं। हिततम पदार्थ को सुख कहते हैं। सुख और

रस पर्यायवाची शब्द हैं। इसलिए सुख रस शब्द का पर्याय शब्द का उल्लेख करना आवश्यक है। रस शब्द के अनेक अर्थ हैं। रसः स्वादे, जले वीर्ये, रस स्वाद बल वीर्य श्रृङ्गारादि, विष, द्रव पदार्थ, राग, गृह, धातु, तिक्त आदि पदार्थ, पारद, प्रेम, भाव, आत्मा, सुपानीय, स्वरस, सुख प्रभृति।

लोक व्यवहार में इस शब्द का प्रयोग अनेक प्रकार है। निन्दारस, निद्रारस, क्रीड़ारस, विमर्दरस, रणरस, सुनुरस, हिंसारस, मादनरस, सुखरस, सेवारस, विषयरस, लावण्यरस आदि हैं। यह सब रस शास्त्रीय रस पर्याय में अन्तर्भाव हो जाते हैं। विषेश परिज्ञान के लिए कहा गया है—

"रसास्तु त्रिविधा वाङ् नैपथ्य स्वभावगाः।
कालानुरूपैरालापैः श्लोकैर्वाक्यं पदैक्यता॥
नानालङ्कार संयुक्तैर्वाचिको रस उच्यते।
कर्म रूप वयो जाति देशपात्रानुवर्त्तिता॥
माल्य भूषण वस्त्राद्यैर्नेपथ्य रस उच्यते।
रूप यौवन लावण्य स्थायि धैर्यादिभिर्पुनः॥
रसः स्वाभाविको ज्ञेय स च नाट्ये प्रशस्यते॥

इस प्रकार वाचिक नेपथ्य स्वाभाविक रस है।

लेख समयानुसार मातृका वर्णन क्रम से होता है। इसका विवरण कुट्टिनी मत व्याख्या में उपलब्ध है।

"शृङ्गारं द्विविधं विद्याद् वाङ् नेपथ्य क्रियात्मकम्"

अग्नि पुराण (३४२ अ०)

रस शब्द से आनन्द का ही बोध होता है। जिसको काव्यात्मा मानते हैं। भरत नाट्यशास्त्र, अलङ्कारशास्त्र, वेद भी इस विषय में एकमत हैं। **"रसनाचर्वणदपि"** इससे प्रतीत होता है, वैदिककाल में भी रस सम्प्रदाय था। वेद में प्रचुर रूप से रस शब्द का प्रयोग है। जल, दूध, सोमरस, वस्तुओं के सारभाग में रस शब्द का प्रयोग देखा जाता है।

तैत्तिरीयोपनिषद में रस शब्द का प्रयोग नित्य सत्य परब्रह्म में किया गया है। जिसका एकबार अनुभव होने पर मुक्ति हो जाती है। अग्निपुराण में रस शब्द

का प्रयोग सुस्पष्टरूप से है। उत्तर मीमांसा में लिखित है "**तत् परं ब्रह्माक्षरं सनातनमजं मानन्ति मनीषिणः।**" एक चैतन्य ज्योतिरीश्वर संविद है, वह आनन्दस्वरूप है। उसको शास्त्रकारगण चमत्काररसरूप कहते हैं।

> **"अक्षरं परमं ब्रह्म सनातनमजं विभुम।**
> **वेदान्तेसु वदन्त्येकं चैतन्यं ज्योतिरीश्वरम्॥**
> **आनन्द सहजस्तस्य व्यज्यते स कदाचन।**
> **व्यक्तिः स तस्य चैतन्य चमत्कार रसह्वया॥**
> **आद्य स्तस्य विकारी यः सोहंकार इति स्मृतः।**
> **नतोभिन्नास्तत्रेदं समाप्त भुवनत्रयम्॥**
> **अभिमानाद् रतिः सा च परितोषमुपेयुषो।**
> **व्यभिचार्य्यादि सामान्याद् शृङ्गार इति गीयते॥**
> विष्णुधर्मोत्तर पुराण में रस संख्या नौ है।

नाट्यशास्त्र एवं अग्निपुराण में एक प्रकार का वर्णन रस के विषय में उपलब्ध है।

अग्निपुराण में इसके वर्ण, देवता विषय में उल्लेख नहीं है। विष्णुधर्म्मोत्तर एवं नाट्यशास्त्र में रस देवता का वर्णन एकरूप है।

भामह, दण्डी, वामनाचार्य रस को स्वीकार नहीं करते हैं। काव्य में भी रस का प्राधान्य स्वीकार नहीं करते हैं। भामह तो रस विरोधी हैं। कविता काव्य में प्रधान विषय अलङ्कार को मानते हैं।

इस प्रकार श्रव्य काव्य में रस गौण है। दण्डी दशगुण को स्वीकार करके भामह के तरह प्रधानरूप से अलङ्कार को मानते हैं। किन्तु दण्डी रस सत्ता को मानते हुए अलङ्कार में अन्तर्भाव करते हैं। वामनाचार्य दण्डी के मत का अनुमोदन करते हुए रीति स्वरूप को प्रतिपादन करते हैं। वैदर्भी-गौड़ी-पाञ्चाली को मानते हैं। किन्तु गुण में भी रस की सत्ता को मानते हुए नाट्य में रस को स्वीकार किये हैं।

उद्भट, रूद्रट प्रसिद्ध रस सिद्धान्त में रुचि नहीं रखते हैं। उनके मत में अलङ्कार-गुणरीति सम्प्रदाय का मत उत्तम है। इसलिए काव्यालङ्कार ग्रन्थ में

प्रतिपादन किये हैं, रस सहित काव्यशास्त्र रसतुल्य है। इसलिये रस निरूपण विषय में सदा सतर्क रहते हैं। काव्य में रस पक्ष का विवेचन भरतमुनि ने किया है। उसमें प्रेमरस का सम्मिलन किया है। इस प्रकार व्यभिचारि एवं सात्विक भाव निर्वचन में सीमातिक्रम भी उन्होंने किया है। व्यभिचारि एवं सात्विक भावों को अङ्गरूप से प्रतिपादन करके काव्यनिर्माण का प्रधान लक्ष्य रस ही है, यह मत रूद्रट का है।

शास्त्र में भगवान का एक नाम पशुपति भी है। जीव को पशु कहते हैं। उन जीवों का पति-स्वामी-पशुपति पालक हैं। जीव कैसे पशु हो सकता है? **पशुपागाष्ट वेष्टितः**, अर्थात् आठ पाश के द्वारा वेष्टित होने के कारण जीव को पशु कहा जाता है। आठ पाश इस प्रकार हैं– घृणा (करुणा) जुगुप्सा, भय, शोक, रति (इच्छा) द्वेष, उत्साह, विस्मय ये आठ पाश जीव में हैं। इसका अपर नाम वासना है, यह बन्धन कारक है। आठ वृत्ति जीवों की है। एक वास्तव वस्तु है, वस्तु का अंश जीव, वस्तु की शक्ति माया, वस्तु का कार्य जगत - सब एक ही वस्तु है। गीता में उक्त है– **ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः**। जीव सच्चिदानन्दरूप है। आठ वृत्तियों से आवृत्त होकर सुख दुःख मोह का भोग करने वाला होता है। ये आठ वृत्तियां निरानन्द होने पर भी आनन्दरूप जीव के साथ संयुक्त होकर आनन्दमयता को प्राप्त करते हैं।

अतएव स्थायिभाव ममत्व रति अभिव्यक्त होकर रसरूपता को अर्थात् आस्वादनीय अवस्था को प्राप्त करता है। यह किस प्रकार हो सकता है? श्रुति कहती है, **"रसो वै सः"** रस ब्रह्म ही है, अपर रसरूप नहीं है। जिस समय ब्रह्म ही रस होता है, उस समय आस्वाद चर्वमाण होता है, उस समय आनन्दरूप चमत्कार होता है, कारण घन परमानन्द का चमत्कार प्रकाश विशेष ही रस है।

अष्ट उपाधियुक्त जीव रसता को प्राप्त करता है। जीव रसिक है, इस प्रकार व्यवहार **"राहो शिरः"** के तरह अभेद में भेद बुद्धि के द्वारा सम्भव है। अतएव आठ वृत्तिरूप स्थायिभाव रस है, किन्तु आठों का उद्भव स्थल शान्त रस है, इष्ट में निष्ठा एवं तृष्णा त्याग इसमें होता है। इसका निर्वेद स्थायिभाव है, इसलिए शान्त को नवम रस कहते हैं। शास्त्रकारगण–

"शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनन्तमनघम्" यह सूक्ति विद्वानों का प्रमाण है।

"न यत्र दुःख सुखं न द्वेषो नापि मत्सरः।
समः सर्वेसु भावेषु स शान्तः कथितो रसः॥
भावो विकारा रत्यादया: शान्तस्तु प्रकृति धर्मतः।
विकारः प्रकृतेर्जातः पुनस्तत्रैव लीयते॥
स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद् भावः प्रवर्त्तते।
पुनर्निमित्तापाये च शान्त एवोपलीयते।
एवं नव रसा दृष्टा नाट्यज्ञैर्लक्षणान्विताः॥"

इति रस परिपाक परिवार का निरूपण हुआ।

रसमात्र ही काव्य का वैशिष्ट्य है। श्रीकृष्णभक्तिविज्ञ व्यक्तिवृन्द उस रस को प्राकृत रस एवं भगवद्विषयक रसरूप में विभक्त करते हैं।

"प्राकृत विषया भगवद्विषयाश्चास्मिन् गताभेदा।
पूर्वे पुरुवीभत्सा: स्फुटमपरे सर्वशर्मदातारः॥
श्रीमद्भागवताख्य: पञ्चम वेदः प्रमाणं हि।

यथा—

न यद्वचश्चित्तपदं हरेर्यशो जगत् पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्षया॥
नूनं दैवेन निहता ये चाच्युत कथासुधां।
हित्वा शृण्वन्त्यसद्गाथां पुरीषमिव विड्भुजः॥
त्वक्-श्मश्रु-रोम-नख-केश पिनद्ध मत्त मांसास्थि-रक्त-कृमि-विट्-
कफ-पित्त जातं।
जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढा या ते पदाब्ज-मकरन्दमजिघ्रती स्त्री॥
निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद् भवौषधाच्छोत्रमनोभिरामात्।
क उत्तमश्लोक गुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विनापशुघ्नात्॥ इत्यादि।
रसा भागवतास्ते तु विज्ञातव्या रसामृतात्।
ते गम्या व्यञ्जनावृत्या या गम्या शब्दवृत्तिषु॥

प्राकृत में रस शब्द से निविड़ वीभत्स रस का बोध होता है। किन्तु श्रीमद्भगवद्विषयक रस तो प्राणिमात्र में आत्मीयबुद्धि उत्पन्नकर परम कल्याण

प्रदान करता है, इस विषय में पञ्चमवेद स्वरूप श्रीमद्भागवतम् ही प्रमाण है। कथित है—

सर्व सुलक्षणपूर्ण हृदयहारिणी वाणी भी यदि श्रीहरि के यश वर्णन में प्रवृत्त नहीं होती है तो, उसको वायस तीर्थ कहते हैं। उच्छिष्ट गर्त्त में काक की प्रवृत्ति होती है, किन्तु कमनीय मानसरोवर में विहरणरत हंसगण उसको सेवन नहीं करते हैं। अर्थात् समदर्शी श्रीहरि के गुणानुवर्णनरत भक्त कभी भी मांसल नायिका वर्णन में लुब्ध नहीं होता है।

सर्वजन हितकारिता में जो हित है, वह हित सर्वथा दुःखद कृत्रिम भोग्यास्पद विषय सेवन से नहीं होता है। अतएव कथित है—

जो लोक विड्भोजनकारी पशु के समान असत् वार्ता को सुनते रहते हैं, उन सबको दैव ने विनष्ट किया है, जानना होगा कारण— सर्वजनहितकर अमृतमय अच्युत की चरित्र कथा को उन्होंने परित्याग किया है।

प्राकृत में आरोपित नश्वर कान्त कान्ता बुद्धि के द्वारा रसास्वादन होता है। किन्तु विवेकी व्यक्ति का कथन है— स्त्रीवृन्द त्वक्, श्मश्रु, रोम, नखकेशयुक्त, मांस, अस्थि, रक्त, कृमि, विट्, कफ, पित्त एवं वायुपूर्ण जीवित शव का भजन कान्तमति से करती रहती हैं। वे सब ही विमूढ़ा हैं। किन्तु जिन्होंने श्रीहरि के चरणारविन्द की सुगन्ध को प्राप्त किया है, वे वैसा नहीं करती हैं।

पशुहत्याकारी निर्दय व्यक्ति एवं आत्मघाती व्यक्ति को छोड़कर उत्तमश्लोक के गुणानुवाद से कोई भी व्यक्ति विरत नहीं होता है। क्योंकि तृष्णाशून्य व्यक्तिगण उसका गान करते हैं। और वह गुणानुवाद भवौषध होते हुए भी मन श्रवण को मुग्ध करता है।

मानव शरीर के समान मानव रचित काव्य भी दुष्ट होता है, और गुण से गुणी होता है, अलङ्कार से अलङ्कृत होता है, अन्यथा क्रूरतादि दोष से वह व्यक्ति विनष्ट हो जाता है।

रस शब्द से भागवत रस को ही रस कहा जाता है, उसका परिज्ञान श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थ से करना आवश्यक है, इसका जो अंश शब्द संकेत से ज्ञात नहीं होता है, उसका परिज्ञान भी व्यञ्जनावृत्ति से होता है।

"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगद्रसनिष्पत्ति" भरतमुनि कृत इस सूत्र के अनुसार रस प्रक्रिया का वर्णन होता है।

"विभावयति-उत्पादयति" इति विभावः कारणम्, अनुपश्चात् भावो भवनं यस्य सोऽनुभावः कार्यम्। विशेषेण आभिमुख्येन चरितुं शीलं यस्येति व्यभिचारी, सहकारी, एतेषां सम्बन्धाद् रसस्थ निष्पत्तिरभिव्यक्तिः, कार्यकारण सहकारित्वेन लोके या रस निष्पत्ति सामग्री सैव काव्यं नाट्ये च विभावादि व्यपदेशा भवन्तीति सम्प्रदाय कारणमत्र— निमित्तम्।

विभाव अनुभाव सञ्चारिभाव के संयोग से, अर्थात् सम्बन्ध से रस निष्पत्ति अर्थात् अभिव्यक्ति साक्षात्कार होता है। लोक में जिसको कार्य-कारण सहकारी शब्द से कहा जाता है, काव्य नाट्य में उसी को विभाव अनुभाव व्यभिचारी कहते हैं।

आलम्बन उद्दीपन भेद से विभाव द्विविध हैं, स्थायिभाव के आश्रय को आलम्बन विभाव एवं जो उसको उद्दीप्त करता है, उसको उद्दीपन विभाव कहते हैं।

"एभिरेव व्यञ्जकैस्तु त्रिभिरुद्रेकमागतैः।
आस्वादाङ्कुरकन्दोऽसौ भाव स्थायी रसायते॥"

व्यञ्जक जो विभाव अनुभाव एवं व्यभिचारिभाव हैं, ये तीन उद्रिक्त होकर आस्वादाङ्कुर के बीज स्वरूप स्थायिभाव को रसरूप में परिणत करते हैं, अतएव ये सब रस के प्रति कारण नहीं हैं, किन्तु रसाभिव्यक्ति के प्रति कारण हैं, स्थायि की नित्यता हेतु उसके परिणाम रस की भी नित्यता सिद्ध है।

स्थायिभाव का निरूपण इस प्रकार है—

आस्वादाङ्कुर कन्दोऽस्ति धर्मः कश्चन चेतसः।
रजस्तमोभ्यां हीनस्य शुद्धसत्वतयासतः॥
स स्थायि कथ्यते विज्ञैर्विभावस्य पृथक्तया।
पृथग् विधत्वं यात्येषा सामाजिकतया सताम्॥

रजोगुण एवं तमोगुण रहित शुद्धसत्व नाम से अभिहित चित्त का एक धर्म ही स्थायिभाव है। रजस्तमोगुण से रहित होने के कारण सामाजिकगण अविद्या रहित होते हैं, अतएव उन सबके शुद्धसत्त्व भी मायावृत्ति नहीं है, किन्तु चिद्रूप ही

हैं, उन सबका रसास्वाद तत्तद्धर्म निष्ठ होने पर भी ह्लादिनी शक्ति की आनन्दमयवृत्ति ही है। जड़ात्मक नहीं है। कारण जड़ परिड़ाम स्वरूप कभी भी आनन्दस्वरूप हो ही नहीं सकता।

स्थायिभाव एक होने पर भी आलम्बन उद्दीपनात्मक विभाव युगल के भेद से सामाजिक जवा कुसुम न्याय से विभिन्नाकार होते हैं, इस प्रकार स्थायिरूप धर्म प्रपञ्चान्तर्गत सामाजिक का रसास्वाद होता है। किन्तु भगवद्पार्षदवृन्द अथवा भगवद्पार्षद के अनुगत साधकवृन्द का रसास्वादन नहीं होता है। उन सब में स्वतःसिद्ध जो स्थायिभाव है, वे ही रसास्वादक होते हैं।

स्थायिभाव अष्टविध हैं, काव्यप्रकाश के मत में निर्वेद को स्थायिभाव मानकर नवम रस होते हैं, भोजराज के मत में वत्सलता एवं प्रेम को मानकर एकादश रस होते हैं, वात्सल्य में ममकार एवं प्रेम में (एकता अनुकूलता में) चित्त द्रव स्थायि है। अतएव रसज्ञ व्यक्तिगण दृश्य एवं श्रव्य काव्य में एकादश प्रकार रस मानते हैं।

भक्तिरसामृतकार के मत में मुख्य गौण भेद से द्वादशविध रस हैं।

एकता अनुकूलता नामक भक्तिरस प्रकरण में –

"शृङ्गारे रति उत्साहो वीरे स्यात् छोको विरागे।
करुणाद्भुतयोर्हासो दास्यभीतिर्भयानकैः।
जुगुप्सा वीभत्स संज्ञे कोपो रौद्रेऽष्टनाट्यगाः ॥

चित्तरञ्जक धर्म विशेष को रति कहते हैं। वह सुखभोग का आनुकूल्य करती है। उक्त चित्त रञ्जकता प्रीति, मैत्री, सौहार्द, एवं भाव शब्द से अभिहित होती है। ये सब एकता अनुकूलता के परिणाम हैं।

प्रधानतः वह दो प्रकार के हैं। सम्प्रयोग विषया, असम्प्रयोग विषया। उसके मध्य में सम्प्रयोग विषय को रति शब्द से एवं असम्प्रयोग विषय को प्रीति शब्द से कहते हैं। बुधगण स्त्रीपुरुष व्यवहार को सम्प्रयोग कहते हैं। सखा की पत्नी में एवं पति के सखा में जो चित्त की रञ्जकता है, उसको प्रीति कहते हैं। जिस प्रकार द्रौपदी एवं श्रीकृष्ण की पारस्परिक प्रीति है। स्त्रीगण का सखी के साथ एवं पुरुषगण का सखा के साथ उक्त प्रीति को मैत्री कहते हैं।

"रतिश्चेतो रञ्जकता सुखभोगानुकूल्यकृत।
सा प्रीति मैत्री सौहार्द भावसंज्ञा स गच्छति॥
सम्प्रयोगः स्त्रीपुरुष व्यवहारः सतां मतः।
असम्प्रयोग विषया सैव प्रीतिर्निगद्यते॥

सैव चेतो रञ्जकता।
सखि पत्न्या पति सखे द्रौपदी कृष्णयोर्यथा।
द्वयोः सखिषु सैव मैत्री निगद्यते॥
द्वयोः स्त्रीपुरुषयोः स्त्रीणां सखिषु पुरुषाणं सखिषु।
मनोवृत्तिमयी प्रीति मैत्री स्पर्शादिकोचिता।
निर्विकारा सदैकभाषा सौहार्दमितीष्यते॥"

देवता विषयक रति को भाव कहते हैं।

"सैव देवादि विषयारतिर्भावश्च कथ्यते।"

चित्त रञ्जकता का विषय देवता गुरु प्रभृति होने से वह भाव शब्द से कही जाती है। श्रीकृष्ण के प्रति देवत्व एवं व्यापकत्व रूप से जो चित्तरञ्जक रति है, वही भाव है, यही भक्तिरस होगा। इसका अपर नाम एकता अनुकूलता है।

रति के अनन्तर श्रवणकीर्त्तनादिरूप भजन पुनः पुनः होने से रति का जो उत्कर्ष होता है, वह प्रथमपाक से भावरूप में परिणत होता है, यहाँ पाक शब्द से पुनः पुनः भजन को जानना होगा। पूर्व्वाचार्य्यों के मत में यह इस प्रकार है–

यथा इक्षुणा रसो ह्रासः पाकात् पाकान्तरैर्गुड़ः।
गुड़ोऽपि पाकतः पाके चरमें स्यात् सितोपलाः॥
सैव रतिर्भावः पूर्वरागो रागाख्य पाकतः।
अनुरागः सप्रणय प्रेमाभ्यां पाकः भागतः॥
स्नेहः पाकमयो याति महारागोऽयमुच्यते।

एकता अनुकूलता का चरम परिपाक अवस्था इसको कहते हैं। एकता अनुकूलतारूप नैरन्तर्य्य भजन से भाव, पूर्वराग, राग, अनुराग, प्रणय, प्रेम, स्नेह एवं चरम अवस्था में महाभाव के रूप में परिणत होता है। इस प्रकार एकता अनुकूलता का चरम पर्यवसान रूप आनन्दोत्कर्ष को महाभाव कहते हैं।

निर्विकार चित्त में जो प्रथम विकार है— अर्थात् रति, स्थायिभाव ममत्व का प्रथम पाक है, वह भाव नाम से अभिहित होता है, इस प्रकार एकता अनुकूलता रूप आनन्द का चरम उत्कर्ष महाभाव गोपिकागण में ही है, अपर भक्तवृन्द में नहीं है।

अतएव भा० १०।४७।५९ में उद्धव ने " **कृष्णेक चैष परमात्मनि रूढ़भावा:**" शब्द से उन सबके भावोत्कर्ष का कीर्त्तन किया है। भा० १०।४७।६१ में तो उन्होंने "**आसामहो चरणरेणु जुषामहं स्याम्**" शब्द से गोपियों के चरणरेणु की प्रार्थना की है, किन्तु समीप में रहते हुए भी कभी रुक्मिणी लक्ष्मी प्रभृतियों की चरणरेणु की प्रार्थना नहीं की है। शास्त्रों में कहीं पर यह देखने में नहीं आता है।

सितोपला— 'मिश्री – मिसरी' मत्स्यण्डिका शब्द से ख्यात है, मत्स्यण्डिका का चरम पाक से उत्पन्न पश्चिम प्रदेश में प्रसिद्ध एक प्रकार सुमिष्ट पदार्थ सितोपला 'ओला' है। यहाँ विकार शब्द का अर्थ है, अपर विषय में आसक्ति रहित चित्त में ही प्रथम विक्रियारूप भाव होता है। जिसकी अभिव्यक्ति हेतु विभावादि को कारण कहा गया है, उसको कहते हैं—

बहिरन्तः करणयोर्व्यापारान्तर रोधकम्।
स्वकारणादि संश्लेषि चमत्कारि सुखरसः॥

बहिरिन्द्रिय एवं अन्तरिन्द्रिय सम्बन्ध में व्यापारान्तर का रोधक अथ च स कारणीभूत विभावादि के सहित सम्मिलित चमत्कार जनक जो सुख है, उसको रस कहते हैं।

उत्तम प्रकृति अनुकार्यगण में यह रस स्वत:सिद्धरूप से रहता है। काव्यादि में सामाजिकवृन्द में उक्त रस आविर्भूत होता है, उनमें सर्वरसाभिव्यक्तिशाली आनन्दबीज स्वरूप एकमात्र चित्त धर्म विशेष स्थायि होता है।

जिस प्रकार एक ही दधि वस्तु सिता, मरिच, कर्पूरादि के सहित मिलकर रसाला नामक पेय वस्तु होती है, उसका आस्वादन के समय में चित्तरस का प्रत्यक्ष होता है। उस प्रकार इसका भी आस्वादन होता है। यह रस उत्तम सम्पत्ति सम्पन्न अप्राकृत अनुकार्यों में एवं भक्तों में होता है।

रस आनन्दधर्मा होने के कारण, वह एक ही प्रकार का होता है। किन्तु भाव ही रति प्रभृति उपाधि भेद से विभिन्न प्रकार होते हैं। जिस प्रकार शरावगत

सलिल समूह का तारतम्य होने पर भी उसमें सूर्य का प्रतिबिम्ब एक प्रकार ही होता है, रस में भी उस प्रकार उपाधिगत भेद है, आनन्दगत किसी प्रकार भेद नहीं है।

रसास्यानन्द धर्मत्वादैकध्यं भाव एव हि।
उपाधि भेदान्नानात्वं रत्यादय उपाधयः॥

जिस प्रकार सितोपला का पाकान्तर नहीं होता है, जिस प्रकार महाभाव का भी परमानन्द स्वरूप होने के कारण पाकान्तर नहीं है।उस प्रकार रस को भी जानना होगा। अतएव रस के विविध प्रकार नहीं है। प्राकृत, अप्राकृत एवं आभास भेद से यह रस त्रिविध होते हैं।

प्राकृत अर्थात् भौतिक, जिस प्रकार मालतीमाधवनिष्ठ है। अप्राकृत जिस प्रकार श्रीकृष्ण राधादि निष्ठ है।

अनौचित्यादि प्रवर्तित होने से ही आभास होता है। वह तीन प्रकार हैं। प्रसिद्ध, कृत्रिम एवं सिद्धि। यदुक्तम्–

"यद्यप्यं रसाभासः परोढ़ा रमणीरतिः।
तथापि ध्वनि वैशिष्ट्यादुत्तमं काव्यत्वमेव तत्॥"

रसाचार्यगण के मत में यद्यपि परोढ़ा रमणी विषयिणी रति रसाभास होता है, तथापि ध्वनि वैशिष्ट्य होने के कारण वह उत्तम काव्य के मध्य में परिगणित होता है। तथापि रस एवं उभय का आभास एवं भाव शान्त्यादि का क्रम नहीं है। इस प्रकार कथन हेतु एवं आभास भी चमत्कार दशा में ध्वनि शब्द वाच्य होता है। इस प्रकार कथन हेतु प्रकृत स्थल में ध्वनि मर्यादा निबन्धन उसका उत्तम काव्यत्व होता है। औचित्य रीति के अनुसार उसकी उत्तमता नहीं होती है।

"अप्राकृते तु परोढ़ा रमणी रतिरेव सर्वोत्तमता भूयसी श्रूयते। न तस्या अनौचित्य प्रवर्त्तितम्। अलौकिकत्व सिद्धे भूषणमेव, न तु दूषणमिति न्यायात्, तर्कागोचरत्वाच्च। तथा च (महाभारते उद्योग पर्वणि) 'अलौकिकाश्च ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्' ब्रज बधूनां कृष्णैकतान मानसत्वेन स्वपति निष्ठत्वाभावात्तेषाञ्च माया कलित तच्छायानुशीलनेन तदङ्ग सङ्गात्, वस्तुत केवलानुरागात्मानोपाधितया चेतो रञ्जकतायाः शुद्धत्वमेव।"

अप्राकृत स्थल में परोढ़ा रमणी रति ही सर्वोत्तम कीर्त्तित है। उक्त रति का अनौचितत्व प्रवर्त्तित नहीं है, कारण नियम इस प्रकार है— अलौकिकत्व सिद्धि हेतु वह भूषण ही है, दोष नहीं है। विशेषत: उक्त प्रयत्न समूह तर्कातीत हैं, जो सब भाव अलौकिक हैं, मनुष्यमति प्रभव तर्क के द्वारा उन सब भावों की परीक्षा करना समीचीन नहीं है। महाभारत के उद्योगपर्व में इस प्रकार कथित है।

ब्रजवधूवृन्द की श्रीकृष्ण में एकाग्र चित्तता हेतु स्वपति निष्ठता नहीं थी। एवं उन सबके माया शरीर मात्र की अनुशीलन होने के कारण उन सबके पतिवृन्द भी उन सबके सहित संसर्ग करने में अक्षम थे। अतएव केवल अनुरागमात्र उपाधि हेतु चित्त रञ्जकता भी विशुद्ध ही है।

शान्त प्रभृति पञ्चविध रति के मध्य में शृङ्गार रति सर्व्वोत्तमा है। वह रति दो प्रकार हैं। स्वकीया एवं परकीया। स्वकीया रुक्मिण्यादि निष्ठ, एवं परकीया ब्रज सुन्दरी निष्ठ है। उभय प्रकार के मध्य में ब्रजसुन्दरी रति ही सर्वोत्तमा है।

समस्त वेदेतिहास पुराणादि के मध्य में सारभूत श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण ने कहा है— **"न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां।"** तुम सबके अनुरूप भजन करने में मैं असमर्थ हूँ। तुम सबने दुर्जर गृहशृङ्खला को छेदन किया है। श्रीमद् उद्धव ने भी कहा है—"जिन्होंने स्वजन एवं आर्यपथ को परित्याग करके भजन किया है।"

श्रीमदुज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थ के नायक भेद प्रकरण (१८) में श्रीरूप गोस्वामीपाद ने कहा है— **"अत्रैव परमोत्कर्ष शृङ्गारस्य प्रतिष्ठित:"** इत्यादौ महानुभावानां दृश्य श्रव्य काव्यादौ परकीया सर्वोत्तमतया भूयसी श्रूयते।

काव्यगत रस का विचार करना आवश्यक है। काव्य दृश्य एवं श्रव्य भेद से द्विविध हैं। दृश्य काव्य में विभावादि केवल शब्दोपात्त होते हैं, अनुकार्य अर्थात् नट, जिसका अनुकरण करता है, वह उसका जो रसग्रह होता है, इसकी सम्भावना क्या है? अनुकर्त्ता अर्थात् अनुकरणकारी जो नट है, तद्गत भी रस नहीं होता है, कारण केवल शिक्षण एवं अभ्यासादि प्रकाश कौशल के द्वारा आस्वादकता भी नहीं हो सकता है।

कदाचित् यावतीय बाह्य वस्तु विषयक ज्ञानशून्यता यदि अनुकर्त्ता में देखने में आते हैं, तो उसको सामाजिक मान लेना चाहिए। किन्तु तादृश दशापन्न

नट का उस प्रकार अनुकरण जीवन्मुक्त व्यक्ति के आहार विहार के समान प्राक्तन संस्कार से ही होता है। ऐसा कहना पड़ेगा।

इससे प्रमाणित हुआ कि रसास्वाद सामाजिक को ही होता है।

नटवृन्द जब अनुकर्त्ता के चरितानुकरण करते हैं, तब उस चरित्र दर्शन श्रवण से चमत्कारातिशय दशा उत्पन्न होती है, उसके प्रभाव से पदार्थान्तर की उपलब्धि विलुप्त होने से तन्मात्र की स्फूर्त्ति होती रहती है। एवं रामसीता का रतिकला-कौशल कैसा अद्भुत है, राम रावण का यह संग्राम कैसा विचित्र है। प्रेतपिशाचादि के ये सब कार्य कितने विस्मयकर हैं। इस प्रकार समस्त रसों में ही चमत्कारपूर्ण वैचित्र्यातिशय की स्फूर्त्ति होती रहती है। कारण– रस में चमत्कारातिशय ही सार पदार्थ है, जिसको छोड़कर रस – रस शब्द से अभिहित नहीं होता है। सर्वत्र ही उत्तम चमत्कार सार बस्तु रूप में प्रतीयमान होने पर समस्त रस ही अद्भुत होते हैं। विज्ञ रसज्ञ व्यक्तिगण की मान्यतायें इस प्रकार ही हैं।

अद्भुतातिशय की स्फूर्ति के समय मिथ्या संशय एवं सादृश्यादि प्रत्यय के अतिरिक्त इस प्रकार एक अनिर्वचनीय प्रत्यय विशेष का आविर्भाव होता है कि कृत्रिम विभावादि भी अकृत्रिमवत् प्रतीयमान होते हैं। एवं चित्रलिखित रमणी की प्रतिमादि में सुस्पष्ट वर्णित होती है। यह रामसीता की मूर्त्ति है, यह राघवेन्द्र सीता शोक सङ्कुल हैं। यह है– दशकन्धर रावण, यह है– दाशरथि, यह जनोद्वेगकर भीषण व्याघ्र है, यह शव समूह के मांसादि भक्षणोन्मत्त पिशाचादि का नृत्य सङ्कुल श्मशान भूमि है।

उस समय सामाजिक के चित्त स्थित रजःतमोभाव निज रस वासना से विधौत होने के कारण, उस स्वच्छतर चित्त में एकमात्र अनिर्वचनीय आनन्द का आविर्भाव होता है।

यहाँ पर प्रश्न हो सकता है कि– एक ही चित्त में रति, शोक, विस्मय प्रभृति यावतीय स्थायिभाव की स्थिति कैसे हो सकती है? कारण वे सब परस्पर इस प्रकार विसदृश होते हैं कि– उन सबकी एकत्र अवस्थिति की सम्भावना ही नहीं है। एवं यति प्रभृति के चित्त में कैसे रति स्थायि हो सकती है? कारण संयमी व्यक्ति वृन्द के चित्त में भयशोकादि की सम्भावना ही कहाँ है?

समाधान के लिए कहना है— आस्वादाङ्कुरबीज स्वरूप जो अनिर्वचनीय चित्तधर्म है, वह यावतीय रसगत चमत्कार का ग्राहक है।

भयानक, वीभत्सादि काव्य एवं नाट्य में ही रस होते हैं, लौकिक में रस नहीं होते हैं, इसलिए नाट्य में आठ प्रकार रस का उल्लेख किया गया है।

नाट्य को छोड़कर लौकिक स्थल में जहाँ पूर्वोक्त रस लक्षण का योग है, उस प्रकार शृङ्गारादि जाति के रस का ही रसत्व सिद्ध होता है।

नाट्यों के मध्य में, शृङ्गार रस का आदित्व हेतु प्रथमतः उसको कहना उचित होने पर भी विशेषरूप से उसका वर्णन आगे होगा। कारण उसका अङ्ग विस्तृत है, सूची कटाह के न्याय से वीर रस का वर्णन पहले हुआ है।

प्राकृत एवं अप्राकृत भेद से वीर रस दो प्रकार होने पर भी यहाँ अप्राकृत का ही उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। सजातीय विजातीय प्रत्यालम्बन भेद से अप्राकृत वीर रस भी दो प्रकार के होते हैं।

विजातीयालम्बन अप्राकृत वीर रस का उदाहरण—

"गुणं कर्णाकृष्टं कर किसलयं तूण शिखरे
धनुश्चक्री मूर्त निपतदिषुवृन्दे तत इतः।
रिपून् भूमौ सुप्तान् कलयति समं देव निकरे
जरासन्धस्याजौ जयति भुज वीर्यं मुरभिदः॥"

जरासन्ध के युद्ध में भगवान मुरवैरी के अपूर्व भुजवीर्य की जय हो, जिस भुजवीर्य के प्रभाव से युद्ध देखने वाले देवगण एक ही समय देखे थे कि भगवान के गुण सर्वदा आकर्ण कर्षित होकर हैं। कर पल्लव निरन्तर तूणाग्र भाग में विराजित हैं, शरासन सतत वक्रीभूत होकर हैं। वाण समूह अनुक्षण इतस्ततः निःक्षिप्त हो रहे हैं। शत्रु समूह भी निरन्तर भूतल में प्रसुप्त हो रहे हैं।

यहाँ उत्साह स्थायी है। एवं वह उभयनिष्ठ है। जरासन्ध आलम्बन विभाव है, एवं जरासन्ध के सम्बन्ध में श्रीकृष्ण भी आलम्बन विभाव हैं। परस्पर की वीरता उद्दीपन विभाव है, वाण वर्षण विषय में हाथलाघव अनुभाव है। गर्व, उग्रता, अमर्ष, चपलादि व्यभिचारिभाव हैं। उन सबके द्वारा पुष्ट होकर स्थायिभाव रसत्व

प्राप्त होता है। रस अनुकार्य स्वरूप प्रकृत श्रीकृष्ण में, परोक्ष एवं काव्य श्रवण हेतु सामाजिक के पक्ष में प्रत्यक्ष है। इस प्रकार विचार अन्यान्य स्थल में करना आवश्यक है।

करुण रस का उदाहरण—

दौर्गुप्तायां मधु विजयिनो हा कथं द्वारवत्या
मन्यायोऽस्यामयमुदभवद् धन्य निष्कल्मषायाम्।
जातं जातं सुतमपहरत्येष मे ज्वालमृत्युः
को मां पाता हरि हरि हहा हा हता हा हता स्मः॥

अत्र शोकः स्थायी, एषां एकनिष्ठः। पुत्रनाशः आलम्बनम्, पुत्रगतममताद्युद्दीपनम्। अनुभावः शिरस्ताड़नादिः। व्यभिचारी—विषाद, दैन्य,ग्लान्यादिः। अयन्तु सामाजिकगत एव, नानुकार्यगतः परोक्षेऽपि। अयं सामाजिक गतोऽप्यप्राकृत कृष्णाश्रयत्वात्।

हाय! मधुसूदन के बाहुहल के द्वारा रक्षिता, पापस्पर्शशून्या, यह द्वारकापुरी है, इसमें भी क्या इस प्रकार अन्याय होने लगा है? जब भी मेरा पुत्र होगा, उस समय क्या अकाल मृत्यु उसको अपहरण करेगी? हाय! इस विषय में कौन मुझको उद्धार करेगा? मैं तो मर गया।

यहाँ शोक स्थायी है, एवं एकनिष्ठ है। पुत्रनाश आलम्बन है। पुत्रगत ममत्वादि उद्दीपन है, मस्तक में कराघातादि अनुभाव हैं, दैन्य ग्लानि विषाद प्रभृति व्यभिचारि भाव हैं।

यह रस सामाजिकगत है, यह अनुकार्यगत नहीं है। अनुकार्य का प्रयत्न नहीं होता है, किन्तु सामाजिकगत होने पर भी कृष्णाश्रयता होने के कारण अप्राकृत है।

अद्भुत रस का निदर्शन—

आलीक सखि लोकलोचनमुदामुद्रेकमुद्भावयन्
सोमस्तोम निवाधयासनिवह प्रद्योत सद्योहरः।
मेघे माघवने मघावपि घृणा निर्वाहको नीलिमा
सा मा न्याधिकरणयमत्र किमहो चित्रम् तमस्तेजसोः॥

अत्र विस्मयः स्थायी, एष एक निष्ठः। आलम्बनं श्रीकृष्णः, उद्दीपनं— तल्लावण्यादि, अनुभावः— रोमाञ्चादिः, व्यभिचारी— आवेग, मति, चापल्यादि। अयं परोक्ष। अनुकार्यगतः प्रत्यक्षः, सामाजिकगतः। अयमप्राकृत एव।

हे सखि! यह अति विचित्र है कि अन्धकार एवं तेज ये दो परस्पर विरुद्ध पदार्थ हैं। यह श्रीकृष्णरूप एक आधार में एक समय में अवस्थित हैं। देखो, अद्भुत नीलिमा, असंख्य सुधाकर एवं प्रभाकर की प्रभा को सहसा अपहरण करके एवं मेघ मण्डल तथा इन्द्रनीलमणि के प्रति भी घृणा उत्पादन पूर्वक लोक लोचन का अपूर्व प्रीति विस्तारकारी आलोकरूप में विराजित हैं।

यहाँ विस्मय स्थायी है, एकनिष्ठ है, आलम्बन श्रीकृष्ण हैं। उद्दीपन लावण्यादि है, अनुभाव रोमाञ्चादि हैं, व्यभिचारी आवेग, मति, चापल्यादि हैं। यह परोक्ष अनुकार्यगत है। प्रत्यक्ष सामाजिकगत है, यह अप्राकृत ही है।

हास्य रस का दृष्टान्त—

उन्मत्ताभिर्वसन्तोत्सवरससमदैर्गोदुहंकन्यकाभिः
क्षोदैः सिन्दूर चन्द्रागुरुमलयरुहां हा दिक्थीकृतोऽस्मि।
जाड्यं गन्धाम्बुसेकैर्रजनी तत इतो धावितुं नास्मि शक्तो
व्यापद्येऽहं वयस्य प्रिय सखमामस्त्विह ब्रह्महत्या॥

अत्र भगवद् सखा विदूषको ब्राह्मण वटुर्मधुमङ्गल वक्ता, हासः स्थायी, एषः बहु निष्ठः, आलम्बनं— वसन्तोत्सवादि, उद्दीपनं— विदूषकस्य वैकलव्यम्। अनुभावः— नयन स्फारतादि, व्यभिचारी— श्रम मद चपलता ग्लान्यादिः।

वसन्तोत्सव हेतु हर्ष एवं मदभर से उन्मत्त होकर गोपकन्यागण सिन्दूर कर्पूर एवं अगुरु चन्दन चूर्ण से मुझको अन्ध प्राय कर दिये हैं। अधिकन्तु अविरल सुगन्ध सलिल सिञ्चन से मुझमें जड़ता आ गयी है। इतस्ततः धावित होकर पलायन करने की शक्ति भी मेरी नहीं रही। हे सखा कृष्ण! मैं तुम्हारा प्रिय सखा हूँ, मेरी रक्षा करो, ब्रह्महत्या न करो।

यहाँ विदूषक मधुमङ्गल वक्ता है, हास्य स्थायी भाव है, यह हास्य अनेक

निष्ठ है, वसन्तोत्सव आलम्बन है, विदूषक की विह्वलता उद्दीपन है, नेत्र विकासादि अनुभाव हैं, एवं श्रम मद चपलता ग्लानि प्रभृति व्यभिचारिभाव हैं।

स्मित हास्य प्रहास भेद से त्रिविध हैं। श्रेष्ठ व्यक्ति के हास्य को स्मित कहते हैं। जिसमें अधरौष्ठ का स्वल्प विस्फारण होता है, दन्तश्रेणी लक्षित नहीं होती है, कण्ठ से किञ्चित निर्गत होता है, उसका नाम हास है। यह मध्यम है।

जिस हास्य से शरीर घर्म्मोक्त एवं नयन रक्तवर्ण एवं अश्रुपूर्ण होते हैं, उत्कट कटु शब्द के साथ मुख गह्वर विस्तृत होता है, एवं दन्तपङ्क्ति प्रकाशित होती है, उसको प्रहास कहते हैं। यह अधम है।

अधरौष्ठ स्फारतया सृक्कण्ठयोरेव विस्फुरत्
अलक्षित द्विजं धीरा उत्तमानां स्मितं विदुः।
विकसद् दशनद्योति गण्डा भोगे प्रफुल्लता
किञ्चित् कलकण्ठरवो यत्र हासो स मध्यमा॥
स घर्म साश्रुताम्राख्य स्फुट घोर कटु स्वनः
व्यात्याननो व्यक्तदन्त वदनेन उद्गीर्णपूर्णार्चिसी।
जिह्वाग्रेण समग्रमुग्रमहसा लेलिह्यसे रोधसी
त्रस्तं मामिह पाहि पाहि भगवन् दासोऽपार्थोऽभवन॥

अत्र अर्जुनस्य भयं स्थायी, सचैकनिष्ठः। आलम्बनं — विश्वरूप प्रदर्शकः श्रीकृष्णः, उद्दीपनं तद्गत द्रंष्ट्रादि, अनुभावः— पाहि पाहि कातर्यम्, व्यभिचारी— अपार्थेऽभवमिति दैन्यम्। एव च कृष्णालम्बनात् सामग्री सान्निध्येन अनुकार्येऽपि रसतो प्राक प्राप्त एव। अत्र भयेऽपि कृष्णस्तुतेस्तत् सम्बन्धात् आनन्द एवेत्यप्राकृत एव। न तु मालत्यादौ। शार्दूलादयावलम्बनेन मकरन्दस्य भयं विननन्दः। सति शौर्ये उत्साह, एष स्थायी भवति। तेन कदाचिदानन्दो जायते, न भयतः, तेन प्राकृते न रस।

भयानक रस का दृष्टान्त —

तुम्हारे जो वदनमण्डल कठोर पर्वतशृङ्ग के समान दन्ताग्र भाग के द्वारा उत्कट हैं। जिससे पूर्ण ज्योति उद्गीर्ण हो रही है, उसके द्वारा ब्रह्माण्ड स्थित पदार्थ जैसे चर्वित हो रहे हैं और उग्र दीप्ति इस प्रकार है, जिसके द्वारा समस्त स्वर्गलोक

जैसे .लौकिक लेहित हो रहे हैं। हे भगवन् मेरी रक्षा करो, रक्षा करो; मैं नितान्त भीत हूँ। मेरा पार्थ नाम आज व्यर्थ हो गया।

यहाँ अर्जुन का भय स्थायी है, यह एकनिष्ठ है। विश्वरूप प्रवर्त्तक श्रीकृष्ण आलम्बन हैं, उनके द्रंष्ट्रादि उद्दीपन हैं, रक्षा करो, रक्षा करो, यह कहकर जो कातरता प्रकटित हुई है, वह अनुभाव है, मेरा पार्थ नाम व्यर्थ हुआ है, इस वाक्य से जो दैन्य प्रतीत होता है, वह व्यभिचारी भाव है।

यहाँ कृष्ण आलम्बन होने के कारण हेतु समूह का सन्निधान वशतः अनुकार्यरूप अर्ज्जुन में प्रथम ही रसत्व हुआ है। भय में भी कृष्ण स्फूर्त्ति होने के कारण कृष्ण सम्बन्ध में आनन्दोदय हुआ है। सुतरां उसको अप्राकृत कहना होगा, मालत्यादि के स्थल में शार्दूलादि आलम्बन के द्वारा भय व्यतीत मकरन्द में आनन्दोत्पत्ति नहीं हुई है। शूरता की विद्यमानता में उत्साह ही स्थायी होता है। उसमें कदाचित् आनन्द की उत्पत्ति हो सकती है। भय स्थल में वैसा सम्भव नहीं है। अतएव प्राकृत स्थल में इसका रसत्व नहीं है।

वीभत्स रस का उदाहरण इस प्रकार है—

"दैत्येन्द्राणां मथित वपुषगन्त्रमेदोऽस्थिमज्जा
मांसासृक्थ पुट पटली स्वादमोदप्रमत्ताः।
कौमोदक्या मधुविजयिनः कीर्तिमुद्कीर्त्तयन्तः
सार्द्धं गृध्रैर्विधतिमुदं प्रेतरङ्गा विशङ्काः॥

अत्र देवासुर संग्रामावसानमालोकयतां व्योमचारिण्यां जुगुप्सा स्थायी, स चैक निष्ठः। शव शरीरादयः आलम्बनम्। प्रेतरङ्काद्युद्दीपनम्, अनुभावः मुख वैकल्यादिः, व्यभिचारिः— ग्लानि दैन्यादिः। एतैः परिपुष्टा जुगुप्सा जुगुप्सैव यद्यपि तथापि भगवत् कृतिरियमिति भगवत् स्मरणादेवानन्दः, प्राकृते तु न त्वानन्दः, अपि तु नट व्यापार दर्शनात् सामाजिकानामेव रसः।

वीभत्स रस का निदर्शन— कौमूदकी गदा के आघात से मथित देह दैत्येन्द्रवृन्द का अन्त्रभेद होने के कारण दरिद्र प्रेतवर्ग निर्भय से अस्थि मज्जा, शोणित, त्वक्, नाड़ी ग्रन्थि प्रभृति का स्वाद ग्रहणपूर्वक आनन्द से उन्मत्त होकर मधुसूदन कीर्त्ति का कीर्त्तन करते करते गृध्रकुल के सहित महाआनन्द प्रकाश कर रहे हैं।

इसमें देवासुर संग्राम समाप्ति के समय संग्राम दर्शनकारी गगनविहारियों में जुगुप्सा स्थायीभाव है। यह एकनिष्ठ है। शव शरीरादि आलम्बन हैं, प्रेतवृन्द उद्दीपक हैं, मुखविकृति प्रभृति अनुभाव हैं, ग्लानि दैन्यादि व्यभिचारी हैं।

उक्त सामग्री समूह के द्वारा पुष्ट जो जुगुप्सा है, वह जुगुप्सा व्यतीत अपर कुछ भी नहीं है। तथापि वह भगवान का कार्य होने के कारण, अन्यका स्मरण से आनन्दोदय हुआ है। प्रकृत स्थल में उस प्रकार आनन्द नहीं हो सकता है। वहाँ नट के प्रयत्न को देखकर सामाजिक में रसाविर्भाव होता है।

अन्य उदाहरण यह है–

"दृशैव करुणार्द्रया सहचरान् समुज्जीवय
न्नभस्य जठरं गतो गरल जात वेदो व्यसन।
तदन्त्र धमनी वसा रुधिर मज्जा लालादिभिः
प्लुतोऽप्यनवलिप्त वनच्छुतिरुचिं सञ्जीवयद्धरिः॥

"अत्र भगवत एव आनन्दत्वात्तदन्त्रादि दर्शनेनाप्यानन्द एव लीलावताम्, तथात्वात् भक्तानाञ्च सामाजिकानाञ्च तस्य स्फूर्त्तावेव।"

विषाग्नि के द्वारा जिन सब सहचर का जीवनान्त हुआ था, करुणार्द्र दृष्टिपात से उन सबको उज्जीवित करके अघासुर के जठर के मध्य में प्रवेश पूर्वक जो भगवान् उन असुर के अन्त्र, धमनी, वसा, रुधिर, मज्जा, लालादि द्वारा आप्लुत होकर भी जन समूह के द्वारा अस्पृस्ट के समान निर्म्मल कान्ति से प्रकाशित हुए थे, उन श्रीभगवान् की जय हो।

यहाँ भगवान की आनन्दरूपता हेतु अन्त्रादि को देखकर लीलापरायण पार्षदवृन्द में भी आनन्दोदय हुआ था। कारण वे सब भी आनन्दमय हैं। भक्तिपरायण सामाजिक की आनन्दस्फूर्त्ति के स्थल में ही रसाविर्भाव होता है।

अथ रौद्र–

"स्पर्शेनाऽपि न वेद्य भवता
मृत्युर्युतं गच्छता,
किं दौर्मण्डल चण्डिमैष भवते
विज्ञापनीयो मया।

येनाखण्डल शौण्ड्य खण्डन कृता
गेण्डूकृतोऽयं गिरिः,
किं रे कष्ट महिष्ट दुष्ट तनुसे
गोष्ठस्य न तिष्ठ रे ॥

अत्र कोपः स्थायी, एकनिष्ठउभयनिष्ठश्च, अत्र तु उभयनिष्ठस्थ। आलम्बनमन्योन्यम्। उद्दीपनम् — अन्योन्यविक्रमः, अनुभावः — वागाडम्बरादिः, व्यभिचारी — गर्वादिः। एवं स्फुटोऽयं रसः। स च भगवति परोक्षः, सामाजिके प्रत्यक्षः, आद्ये विजातीयालम्बनोऽप्राकृतः, द्वितीयो अप्राकृत एव।

रौद्ररस का दृष्टान्त इस प्रकार है। हे दुरात्मन् अरिष्ट! तु हमारे गोष्ठ का उत्पीड़न कर रहा है? मुहूर्त्तकाल के लिए अपेक्षाकर, अथवा तू स्पर्शमात्र से ही मर जाएगा। तू मुझको कैसे जानेगा? मेरे बाहुमण्डल की प्रचण्डता का अनुभव तेरे को कैसे कराउँगा? इस भुजदण्ड से आखण्डल का पराक्रम भङ्ग हुआ था। इस प्रभाव से ही गोवर्द्धनगिरि कन्दुकवत् उत्क्षिप्त हुआ था।

यहाँ कोप स्थायी है, वह एकनिष्ठ एवं उभयनिष्ठ है, यहाँ उभयनिष्ठ है। उभय ही उभय के आलम्बन हैं। परस्पर का आलम्बन उभय ही हैं। परस्पर का विक्रम उद्दीपन है, वागाड़म्बरादि अनुभाव है, गर्वादि व्यभिचारी है, इस रीति से यहाँ रस पुष्ट हुआ।

यह रस भगवान में परोक्ष एवं सामाजिक में प्रत्यक्ष है। प्रथमोक्त एकनिष्ठता स्थल में वह विजातीय आलम्बन भी अप्राकृत है। द्वितीय स्थल में अप्राकृत नहीं है।

अथ शान्तः —

"वयोजीर्णं हा धिक् तदपि नहि जीर्णो मदभरः
श्लथं चर्माङ्गो यस्तदपि नहि रागः श्लथ एव।
रदाः शीर्णाः शीर्णस्तदपि नहि मोहः कथमयं
जनः कंसारातेश्चरणकमलाय स्पृहयतु॥

अत्र निर्वेदः स्थायी, स चैकनिष्ठः। आलम्बनं— संसार दुःखम्।

उद्दीपनम् — पुण्यतीर्थादयः, अनुभावः — विषयसम्पत्यादित्यागः। व्यभिचारी — मति धृति सख्यादिः। एष रसोऽनुकार्ये — परोक्षः, सामाजिके प्रत्यक्षः, चमत्कारी चेत्यम्।

शान्त रस का उदाहरण — वयस् जीर्ण हुआ, किन्तु मद का प्राबल्य कुछ भी जीर्ण नहीं हुआ, प्रत्येक अङ्ग के चर्म शिथिल हुआ, किन्तु विषयराग शिथिल नहीं हुआ। दन्त समूह शिथिल हो गये, किन्तु मोह अणुमात्र भी शिथिल नहीं हुआ, यह अधम व्यक्ति, कैसे कंसध्वंसकारी श्रीकृष्ण के पादपद्म के प्रति स्पृहाशील होगा।

यहाँ विवेक स्थायी है, यह एकनिष्ठ है, संसार दुःख आलम्बन है, पुण्यतीर्थादि उद्दीपन है, विषयसम्पत्यादित्याग अनुभाव हैं। मति धृति स्मृति व्यभिचारीभाव हैं। यह रस अनुकार्य में परोक्ष एवं सामाजिक में प्रत्यक्ष है। अति चमत्कारजनक भी है। महाभारत में लिखित है —

"यच्च धामसुखं लोके यच्च दिव्यसुखं महत्।
तृष्णाक्षय सुखं स्यैते नार्हतः षोड़शी कलाम्॥"

रस में चमत्कारातिशय के आतिशय्य हेतु आनन्द का आतिशय्य होता है। एवं श्रीकृष्णभक्ति में उपयोग होने पर यह रस अप्राकृत होता है। जिस प्रकार निर्वेद व्यभिचारी होकर भी शान्तरस में स्थायिता प्राप्तकर रसरूप होता है। उस प्रकार उक्त रति देवादि विषया होने से भावशब्द से अभिहिता होती है।

इस वाक्य से उल्लिखित पारिभाषिक भाव ही स्थायित्व को प्राप्तकर उस विभावादि सामग्री सम्मिलन से भक्तिरस में परिणत होता है। उक्त भक्तिरस — श्रीकृष्णाश्रित होकर रत्यादि विविध स्थायिभाव के सहित मिलित होकर दशविध होते हैं। उक्त भेद समूह का उदाहरण ग्रन्थान्तर में प्रसिद्ध है।

अथ वात्सल्यम् —

"आराज्जानुकरोपसर्पणपरो जातं स्मितं सञ्चर
न्नङ्गारोहमनाप्लुवन् रुरुदिशा विम्लान चन्द्राननः।
अभ्यासार्थमुपेक्षितोऽपसरण प्रक्रान्तया सत्वरं
कण्ठेकृत्य यशोदया न न नेत्याश्वासि वालो हरिः॥

वात्सल्य का उदाहरण – बालक श्रीकृष्ण, सम्प्रति जानु एवं हस्त के द्वारा समीप देश में सञ्चरण करने में समर्थ होने के कारण, एकदिन सामने यशोदा को देखकर उनके क्रोड़ में आरोहणार्थ हँसकर धावित हुए, यशोदा पुत्र का गमन अभ्यासार्थ उनको अङ्क में लेने की उपेक्षाकरके पश्चाद्गमन में अपसरण करने लगीं। उस समय बालक, जननी के क्रोड़ में आरोहण न करपाने से म्लानमुख से रोदन करने का उपक्रम किया था, यह देखकर जननी सत्वर उसको कण्ठ में स्थापन किये, एवं ना, ना, ना, तुमको क्या अनादर कर सकती हूँ, इत्यादि वाक्यों से आश्वास प्रदान करने लगीं।

यहाँ ममता स्थायी है। यह एकनिष्ठ है। श्रीकृष्ण आलम्बन हैं, करचरण के द्वारा तदीय सञ्चरण उद्दीपन है। कण्ठ में ग्रहण एवं आलिङ्गनादि अनुभाव है। हर्षादि व्यभिचारी हैं। यह रस व्रजेश्वरीनिष्ठ होकर परोक्ष है, एवं सामाजिकनिष्ठ होकर प्रत्यक्ष होता है। उभय प्रकार ही अप्राकृत है।

यहाँ पर एकता अनुकूलतारूप प्रेमरस का वर्णन इस प्रकार है –

"प्रेयांस्तेऽहं त्वमपि च मम प्रेयसीति प्रवाद
स्त्वं मे प्राणा अहमपि तवास्मीति हन्त प्रलापः।
त्वं मे ते स्याममिति च यत्तच्चनो साधु राधे
व्यवहारे नौ नहि समुचितो युस्मदस्मत् प्रयोगः॥"

अत्र चित्तद्रवः स्थायी, स च उभयनिष्ठः, आलम्बनमन्योऽन्यम्। उद्दीपनमन्योन्य गुण परिमलः। अनुभावः –विशिष्य- निर्वचनाभावः। व्यभिचारीमौत्सुक्यादि। परोक्षः श्रीकृष्णराधयोः, सामाजिकानां प्रत्यक्षः, प्रेमरसे सर्वरस अन्तर्भवन्तीति प्रेमाङ्गं श्रृङ्गारादयो अङ्गमिति विशेषः।

केषाञ्चिन्मते श्रीराधाकृष्णयोः श्रृङ्गार एव रसः। तन्मतेऽपि एतदुदाहरणं नासङ्गतम्। श्रृङ्गारोऽङ्गी –प्रेमोङ्गम्। अङ्गस्यापि क्वचिदुद्रिक्तता, वयन्तु प्रेमाङ्गी - श्रृङ्गारोऽङ्ग इति विशेषः।

उदाहरण–

**उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रेम्ण्यखण्ड रसत्वतः।
सर्वे रसाश्च भावाश्च तरङ्ग इव वारिधौ॥**

हे राधे! मैं तुम्हारा प्रियतम हूँ, तुम मेरी प्रेयसी हो, ये सब उक्ति, अथवा तुम जीवन हो, मैं तुम्हारा जीवन हूँ। ये सब वाक्य प्रलाप मात्र हैं, और तुम मेरी, मैं तुम्हारा, इस प्रकार जो प्रयोग है, साधु प्रयोग नहीं है, कारण – हम दोनों के कथोपकथन – साधु प्रयोग नहीं हैं, कारण – हम दोनों के कथोपकथन में युष्मद् एवं अस्मद् शब्द का प्रयोग कभी हो ही नहीं सकता।

यहाँ चित्तद्रव स्थायी है, वह उभयनिष्ठ है। उभय ही परस्पर के आलम्बन हैं। परस्पर के गुणोत्कर्ष उद्दीपन हैं। जिसका विशेष कहना होगा, उसका निर्वचन करने में असमर्थ होने पर अनुभाव होता है। मति औत्सुक्यादि व्यभिचारी हैं।

यह श्रीकृष्णराधा के पक्ष में परोक्ष है, सामाजिक के पक्ष में प्रत्यक्ष है। समस्त रस इस रस में प्रविष्ट होने पर इसके अङ्गादि अति विस्तृत हैं।

विज्ञ व्यक्ति के मत में श्रीकृष्णराधा के सम्बन्ध में शृङ्गार ही रस है। इस मत में भी शृङ्गार अङ्गी है एवं प्रेम अङ्ग है। सुतरां यह उदाहरण असङ्गत नहीं होगा। कारण, अङ्गी की अपेक्षा अङ्ग का कदाचित् आधिक्य भी होता है।

प्रेम में अखण्ड सत्ता विद्यमान होने के कारण समुद्र में तरङ्ग के समान समस्त रस एवं भाव उसमें सर्वदा आविर्भूत एवं तिरोभूत होते रहते हैं। शृङ्गार, प्रेम, भक्तिरस – पर्यायवाची शब्द हैं, अर्थ है– एकता, अनुकूलता, त्याग, समर्पण, सेवा। राधा में एकता अनुकूलता त्याग समर्पण सेवा है, प्रेम में एकता अनुकूलता है।

भक्तिरस का उदाहरण –

"जय श्रीमद्वृन्दावनमदननन्दात्मज विभो,
प्रियाभीरी वृन्दारिकनिखिल वृन्दारिकमणे।
चिदानन्दस्यन्दाधिक पदारविन्दासव नमो,
नमस्ते गोविन्दाखिल भुवन मकरन्दाय महते॥

अत्र देवविषयत्वाच्चेतो रञ्जकता रतेरेव भावः। स एव स्थायी, आलम्बनम्– श्रीकृष्ण, उद्दीपनम् – तन्महिमादि, अनुभावः – हृदय द्रवादि, व्यभिचारी – निर्वेद दैन्यादिः। परोक्ष – भक्तानाम्, सामाजिकानाञ्च प्रत्यक्षः।

भक्तिरस का दृष्टान्त – हे विभो ! श्रीवृन्दावनमदननन्दात्मज तुम्हारी जय हो। प्रियतम श्रीगोपाङ्गना ही तुम्हारी शिरोभूषण के सदृश हैं। तुम निखिल सुरवृन्द के शिरोभूषण तुल्य हो। तुम्हारे चरणारविन्दमकरन्द चिदानन्दधारा से भी मधुर हैं। हे गोविन्द ! निखिल विश्वबीजस्वरूप अतिमहान् स्वरूपको मैं पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ।

यहाँ देवता विषयक होने के कारण चित्तरञ्जकता रति ही भाव है। वही यहाँ स्थायी है। श्रीकृष्ण – आलम्बन हैं। उनकी महिमादि उद्दीपन है। हृदय द्रवादि अनुभाव हैं। निर्वेद दैन्यादि – व्यभिचारी हैं। भक्तवृन्द के पक्ष में यह परोक्ष है। सामाजिक के पक्ष में प्रत्यक्ष है।

यद्यपि भगवान श्रीकृष्ण सर्व रस सम्बलित हैं, तथापि आप ही शृङ्गार रस के देवता हैं। उस रस का वर्ण उनके वर्ण के समान होने के कारण आप मूर्त्तिमान शृङ्गार हैं।

कथित है– शृङ्गार नामक यह रस श्याम वर्ण है, एवं शृङ्गार नामक रस के देवता श्यामवर्ण कृष्ण हैं, इस प्रकार समस्त रसों के वर्ण एवं देवता एक श्रीकृष्ण हैं, सर्व रसात्मक हैं। उदाहरण इस प्रकार है–

"शृङ्गारी राधिकायां, सखिषु सकरुणः क्ष्वेड्दाहे वदाहे।
वीभत्सो तस्य गर्भे व्रजकुल तनया चेल चौर्ये प्रहासी॥
वीरो दैत्येषु रौद्रो कुपितवती तुरासाही हैयङ्गवीनं।
स्तेयं श्रीमान् विचित्रो निज महसि शमी दामबन्धैः स जीयात्॥

जो राधिका प्रति शृङ्गार रसशाली हैं। सखागण अघासुर के विषानल से दग्ध होने पर उन सबके प्रति करुण हैं, अघासुर के उदर में प्रवेश के समय वीभत्सरसमय हैं। ब्रजकुलललनावृन्द के वस्त्रहरण के समय में हास्यरस परायण हैं। दुर्दान्त दैत्य हनन में वीररसाश्रय हैं। क्रुद्ध सुरपति के प्रति रौद्र रसावतार हैं, हैयङ्गवीण हरण में भीति विह्वल हैं, निज तेज दर्शनकर विस्मयमग्न हैं। दामबन्धन में शान्तरस सम्पन्न हैं। उन भगवान वासुदेव की जय हो।

ध्वनि प्रस्थान के अनुसरण से १४६३-१४७१ शकाब्द में श्रीरूपगोस्वामी रचित श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु और श्रीउज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थ भक्तिरस प्रतिपादक

असमोर्द्ध ग्रन्थ हैं, इसके अनुसार भक्तिरस का विवरण इस प्रकार है। ग्रन्थकार ने पश्चिम विभाग (१।२) में कहा है–

**"निवृत्तानुपयोगित्वाद् दुरूहत्वादयं रसः।
रहस्यत्वाच्च संक्षिप्य विततान्गोऽपि लिख्यते॥"**

लौकिक रस साजात्य होने के कारण निवृत्तिमार्ग के लिए एकता अनुकूलता त्याग समर्पण सेवात्मिका भक्ति अनुपयोगी है, दुरूह है, अत्यन्त गोपनीय है। तथापि इसका वर्णन योग्य अधिकारी के लिए किया जाता है। भक्तिरसामृतसिन्धु में भक्तिरस का लक्षण इस प्रकार है–

**"विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।
स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभिः।
एषा कृष्णरतिः स्थायीभावो भक्तिरसो भवेत्॥**

श्रीकृष्ण विषयक स्थायीभाव ममत्व जिसको एकता अनुकूलता, त्याग, समर्पण, सेवात्मिका मानसिकवृत्ति सत्यरूप से है, उस हृदय में श्रीकृष्ण विषयक यत्किञ्चित् नाम रूप लीला प्रभृति के श्रवण से चमत्कारपूर्ण आस्वादन होने पर भक्तिरस होता है। भाग्यवानजन ही भक्तिरसास्वादन का अधिकारी है। अधिकारी का निर्णय निम्नोक्त शब्दों से हुआ है–

**"प्राक्तन्याधुनिकी चास्ति यस्य सद्भक्ति वासना।
एष भक्तिरसास्वादस्तस्यैव हृदि जायते॥"**

पूर्व्व जन्मार्जित एवं वर्तमान जन्मार्जित निष्कपट भाव से श्रीकृष्ण एवं उनके सम्बन्धीय प्राणिमात्र के प्रति एकता अनुकूलता करने की वृत्ति जिसके मन में हो, वह भक्तिरसास्वादन का अधिकारी है।

रस ब्रह्मवत् मन वाणी का अगोचर होने पर भी भाग्यवान व्यक्ति द्रष्टा श्रोता भक्ति रसास्वादन करने में सक्षम होते हैं। दृश्य काव्य में द्रष्टा, श्रव्य काव्य में श्रोता को सामाजिक कहते हैं। दृश्य काव्य में अनुकार्याभिनय दर्शक का, श्रव्य काव्य में वर्णनीय नायक वर्णनकारी श्रोता का रसास्वाद होता है।

"तस्माद् लौकिकैरयं वेद्यः सहृदयैरयम्।"

भक्तिरसामृतग्रन्थोक्त रसलक्षण इस प्रकार है – (२।५।१०४)

"व्यतीत्य भावनावर्त्म यश्चमत्कार सारभूः।
हृदि सत्त्वोज्ज्वले वाढ़ं स्वदते स रसो मतः॥"

भरतमुनि ने भी कहा है –

विभावानुभावव्यभिचारिसंचारि संयोगाद् रसनिष्पत्तिः।
विभावैरनुभावश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः।
स्वाद्यत्वं नीयमानासौ स्थायीभावो रसो मतः।

रस का निमित्तकारण विभाव है, समवाय स्थायिभाव है। असमवायि सञ्चारिभाव है। कार्यरूप में अनुभाव एवं सात्विकभाव का ग्रहण होता है। सारार्थ यह है कि – सामाजिक के चित्तगत स्थायिभाव 'ममत्व' एकता अनुकूलता काव्यगत विभावानुभाव सात्विक व्यभिचारिभाव के सहित मिलित होकर रस होता है। अर्थात् आस्वादन अवस्था को प्राप्त करता है।

प्राकृत अप्राकृत भेद से रसशास्त्र दो प्रकार हैं, भक्तिवादियों के मत में प्राकृत नायक प्रभृति का रसास्वाद नहीं होता है किन्तु श्रीरामसीतादि दिव्य नायक नायिका का रसास्वाद होता है। अतएव भगवद्विषयक काव्यशास्त्र विनोद के विना सामाजिक का रसास्वादन नहीं होता है, तब तो सामाजिक का रसास्वादन असम्भव है। प्राकृत अनुकार्य का रसास्वादन असिद्ध होने से लौकिक काव्यनाट्य की आलोचना से सामाजिक का भी रसास्वादन नहीं होगा। साधारण रसवेत्ता के मत में "पारिमित्याल्लौकिकत्वात् सान्तरायत्वाच्च। (साहित्य दर्पण - ३) अनुकार्य में रसास्वाद असिद्ध होने पर भी महाकवि के नैपुण्य से काव्यनाट्यादि से रसास्वाद होना सम्भव होता है।

भक्तिरसामृतसिन्धुकार के मत में रसलक्षण में **"हृदि सत्त्वोज्ज्वले बाढ़ं स्वदते स रसोमतः"** सत्व शब्द का उल्लेख हुआ है। साधारणतः प्रतीति के लिए साहित्यदर्पणोक्त विश्लेषण से ही उसका अर्थ जानना आवश्यक होगा। भक्तिस्वरूप को अप्राकृत चिदानन्दरूप माना गया है।

साहित्यदर्पणकार ने कहा है –

"रजस्तमोभ्यामस्पृष्टं मनः सत्त्वमिहोच्यते। बाह्य भेद विमुखतापादकः कश्चनान्तरो धर्मः सत्वमिति च।"

अतएव काव्यनाट्य दर्शन जनित साधरण समस्त व्यक्तियों का रसास्वादन नहीं होता है। भाग्यवान् सहृदय व्यक्ति का ही रसास्वाद होना सम्भव है। साधारण रस प्रतिपादक ग्रन्थ में इस सत्व को ही सामाजिक में रसाविर्भाव कहते हैं। इसके विना सामाजिक का रसास्वाद नहीं होता है। सत्त्वोद्रेक का हेतु निरूपण भी दर्पणकार ने किया है – **"अत्र च हेतुस्तथाविधालौकिक काव्यार्थ परिशीलनम्।"** अर्थात् अलौकिक काव्यार्थरूप विभावादि का सम्यक् अनुशीलन से ही अत्यन्त अभिनिवेश होता है। उससे ही सत्त्वोद्रेक होना सम्भव है। अतएव **"सामाजिक चित्तगत स्थायिभावो हि काव्यनाट्यस्थित विभावादिभिर्मिलित्वा रसाय कल्पतेति"** कथन समीचीन है।

भावः – प्रायशः रस भाव का साम्य होने पर भी उभय में किञ्चित् तारतम्य विद्यमान है। रसामृतग्रन्थ के (२।५।१०५) में भाव का लक्षण इस प्रकार है –

"भावनायाः पदे यस्तु बुधेनान्यबुद्धिना।
भाव्यते गाढ़ संस्कारैश्चित्ते भावः स कथ्यते॥"

भरत ने भी कहा है – **"देहात्मकं भवेत् सत्वं सत्वाद् भावाः समुस्थिताः, रसानुभवोपयोगि जन्मान्तरीय संस्कारादिकं सूक्ष्मभावेन शिशुतायां स्थितमपि तद्विकासाय सामाजिकस्य (अनुकार्यस्यापि) वयःसन्धि प्रभृतिकं वयोवस्या विशेषमपेक्षते।"**

'रसतरङ्गिणी' ग्रन्थ में भानुदत्त ने भी कहा है – **"चित्तस्थ रसानुकूलो विकारोऽवस्थाविशेषो वा भावः" विकारोऽयं द्विविधः (१) आन्तरः, (२) शरीरश्च । स्थायी सञ्चारी यो भावः स आन्तरः, तथानुभावः 'उद्भास्वर – नृत्यगीतादिकं' सात्विकभावश्च शारीरी विकारः। स्थायिभावो हि मुख्यतया पञ्चविधो गौणश्च सप्तएव। सञ्चारिणास्त्रयस्त्रिंशत् सात्विकाश्चाष्ट। सामाजिकस्य (अनुकार्यस्यापि) चित्ते स्थायिभावस्य परिपुष्यानुयायि खलु अनुभाव-सञ्चारिभावयोस्तरङ्ग प्राबल्यस्यापि न्यूनाधिक्यं जायते।**

अलङ्कार कौस्तुभ (५) में स्थायिभाव का वर्णन इस प्रकार है –

"आस्वादाङ्कुर कन्दोऽस्ति धर्मः कश्चन चेतसः।
रजस्तमोभ्यां हीनस्य शुद्धसत्त्वतया मतः॥
स स्थायि कथ्यते विज्ञै र्विभावस्य पृथक्तया।
पृथक्विधत्वं चेत्येषः सामाजिकतया सताम्॥"

सामाजिकतया सतां सामाजिकानामेक एव कश्चिदास्वादाङ्कुरकन्दो मनसः कोऽपि धर्मविशेषः स्थायी। स तु विभावस्योक्त प्रकार द्विविधस्य भेदैरेव भिद्यते। अनुकार्य्याणान्तु स्वतन्त्रा एव स्थायिनो नानाविधः।

पूर्व्वोक्त द्वादश प्रकार भाव निज निज अनुकूल उपकरणों के सहित मिलित होकर परम आस्वादन अवस्था को प्राप्त करते हैं। अनवस्थित सुस्थिररूप से हृदय में अवस्थित होकर स्थायीभाव कहलाते हैं। उक्त द्वादश विधता को छोड़कर अपर कोई भाव, स्थायीभाव नाम से परिचित नहीं होते हैं। उसके मध्य में कतिपय भाव, सञ्चारिता को प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार मधुर में हासादि, साहित्यदर्पणकार के मत में (साहित्य दर्पण ३) "इत्यादयोऽपि अनियते रसे स्यु र्व्यभिचारिणः" प्रबलमभिव्यक्तः सञ्चारी, सामान्यतया व्यक्तः स्थायी, तथा देवादि विषया रतिश्चापाततो भाव इति कथ्यते।"

"सञ्चारिणः प्रधानानि देवादि विषया रतिः।
उद्बुद्धमात्र स्थायी च भाव इत्यभिधीयते॥"

श्रीबलदेवकृत साहित्य कौमुदी के (४।१२) मूल में उक्त है – **"रतिर्देवादि विषया व्यभिचारी तथांजितः।"** कृष्णानन्दिनी टीका में लिखित है – **"किञ्च हासादय कश्चित् व्यभिचारिणश्च स्युः, यदुक्तं श्रृङ्गारवीरयोर्हासो वीरे क्रोधस्तथामतः । शान्ते जुगुप्सा कथिता व्यभिचारीतया पुनः।** (४/१३)

विभावेनानुभावेन व्यक्त सञ्चारिणा तथा।
रसतामेते रत्यादिः स्थायिभावः स चेतसाम्॥ (दर्पण ३/१)

विभावादयो कथ्यन्ते। सात्विकाश्चानुभावरूपत्वात् न पृथक् उक्ताः। व्यक्तो दध्यादि न्यायेन रूपान्तरपरिणतो व्यक्तीकृत एव रसो न तु दीपेन घट इव पूर्वसिद्ध व्यज्येते। तदुक्तं लोचनकारः– 'रसा प्रतीयन्ते इति त्वोदन

पचतीतिवद्व्यवहारः इति। अत्र चरतीत्यादि पदोपानादेव स्थायित्वे प्राप्ते पुनः स्थायी पदोपादानं रत्यादिनामपि स्थायित्व प्रतिपादनार्थम्। ततश्च भावः स्थायितां प्रतिपद्यते' रसावस्थभाव एव स्थायीभावः। अयमेव विभावादिभिर्मिलित्वा रसाय परिणमति।

"भावा एव अभिससम्बद्धाः प्रयान्ति रसरूपताम्।"
बस्तुतस्तु स्थितिरियमेव।

"न भावहीनोऽस्तिरसौ न भावो रसवर्जितः।
परस्पर कृतासिद्धिरुभयो रसभावयोः॥"

साहित्यदर्पणकार की इस उक्ति से प्रतीत होता है– रस एवं भाव, कस्तूरी एवं कस्तूरीगन्ध के समान अविच्छेद्य सम्बन्धान्वित हैं। आलङ्कारिकों के मत में तो भाव भी रस ही है–

"रसभावो तदाभासौ भावस्य प्रशमोदयः।
सन्धिः शबलश्चेति सर्वेऽपि रसनाद्रसाः॥"

रस धर्म के उपयोगी होने के कारण भावादि में भी उपचार से रस शब्द का प्रयोग होता है। भक्तिरसामृतसिन्धुग्रन्थ में उक्त है–

"भावाविर्भाव जनिताश्चित्तवृत्तय ईरिताः।

नाट्यशास्त्र का कथन है–

"विभावेनोद्धृतो योऽर्थः स भाव इति संज्ञितः"

काव्यप्रकाश (४) में विभाव का लक्षण इस प्रकार है–

"कारणान्यथ कार्याणि स कारणानि यानि च।
रत्यादिः स्थायिनो लोके तानि चेद् नाट्यकाव्ययोः।
विभावा अनुभावाश्च कथ्यते व्यभिचारिणः॥"

लौकिक में रस का कारण नायक एवं नायिका हैं, काव्य नाट्य में अभिनय एवं वर्णन कुशलता से विभावना को प्राप्त करते हैं। जैसे नलदमयन्ती है। सामाजिक के स्थायीभाव को विभावित करता है, अर्थात् भावनापदवी को प्राप्त

कराता है अतः उसे विभाव कहते हैं। विभाव दो प्रकार हैं। आलम्बन एवं उद्दीपन। नायकनायिका आलम्बन हैं। कैशोर, वसन्त, मलय पवनादि उद्दीपन हैं।

भक्तिरसामृतसिन्धु में उक्त है – (२।१।१५)

"तत्र ज्ञेया विभावास्तु रत्यास्वादन हेतवः।"

अग्निपुराण में वर्णित है –

"विभाव्यते हि रत्यादि र्यत्र येन विभाव्यते।
विभावो नाम स द्विधा आलम्बनोद्दीपनात्मकः॥"

साहित्यदर्पण के मत में **"विभाव्यते, आस्वादाङ्कुर प्रादुर्भावयोग्याः क्रियन्ते सामाजिक रत्यादिभावा एभिरिति विभावो उच्यते।"**

विषयाश्रय भेद से आलम्बन द्विविध हैं–

(२) अनुभाव – भक्तिरसामृतसिन्धु (२।२।१)

"अनुभावास्तु चित्तस्थ भावानामवबोधकाः।"

चित्तस्थ भावों का अवबोधक को अनुभाव कहते हैं। अलङ्कार - उद्भास्वर वाचिक भेद से त्रिविध का उल्लेख उज्ज्वलनीलमणि के अनुभाव प्रकरण में है।

(३) सात्विक – भक्तिरसामृतसिन्धु (२।३।१)

"कृष्णसम्बन्धिभिः साक्षात् किञ्चिद् वा व्यवधानतः।
भावैश्चित्तमिहाक्रान्तं सत्त्वमित्युच्यते बुधैः।
सत्वादस्मात् समुत्पन्ना ये भावा स्ते तु सात्त्विकाः॥"

अनुभाव विशेष ही सात्विक हैं, तथापि पृथक नाम से अभिहित होने का कारण है, शुद्धसत्व से आविर्भूत होने के कारण गोबलीवर्द्द न्याय से इसे सात्विक कहते हैं। ये स्तम्भ कम्पादि अष्टविध होते हैं।

(४) व्यभिचारी – अपर नाम सञ्चारी है। भक्तिरसामृतसिन्धु (२।४।१)

"विशेषेणाभिमुख्येन चरन्ति स्थायिनं प्रति।
वागङ्ग सत्वसूच्या ये ज्ञेयास्ते व्यभिचारिणः।
सञ्चारयन्ति भावस्य गतिं स्थायिनोऽपि ते॥"

जो भाव, स्थायीभाव को पुष्ट करता है, एवं उक्त स्थायीभाव से ही उत्थित होकर उसमें विलीन होता है, उस भाव को सञ्चारी कहते हैं। सामाजिक के स्थायिभाव को वैचित्रीयुक्त करता है, अतः इसको सञ्चारी कहते हैं। निर्वेद, विषाद, ग्लानि प्रभृति तैंतीस व्यभिचारी भाव हैं।

विभाव के द्वारा सहृदय सामाजिक के चित्त में जो भावित होता है, उसे भाव कहते हैं। जिससे सामाजिक के चित्त में भावोन्मेष अथवा भाव का आविर्भाव होता है, उसे भी भाव कहते हैं।

मूलगत नायक नायिका को अनुकार्य कहते हैं। इस प्रकार अनुकार्य एवं सामाजिक दोनों में अनुभाव सात्विक व्यभिचारी भाव की स्थिति होती है।

संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

(१) काव्य नाट्य श्रवण दर्शन प्रभृति से सामाजिक के चित्त में विभाव अनुभाव की उपस्थिति होती है।

(२) आक्षेप से अर्थात् व्यञ्जनावृत्ति से बोध होने पर सामाजिक के चित्त में सत्वर सञ्चारी एवं स्थायिभाव का आविर्भाव होता है।

(३) साधारणीकरण व्यापार से '**नलदमयन्ती**' का अथवा मेरा है, इस प्रकार रीति से विभावादि चतुष्टय का प्रत्यय सामाजिक का होता है।

(४) अनन्तर व्यञ्जना के द्वारा अनुकार्य के सहित समानाकार रस की प्रतीति सामाजिक को होती है।

(५) स्वदनाख्य व्यापार के द्वारा "**अहमेव दमयन्ती विषयको रतिमान् नल एव**" इस प्रकार स्वीय रस का चित्त में रत्यादि अभेदात्मक निज में नायकाभेदात्मक रससाक्षात्कार सहृदय सामाजिक का होता है।

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु एवं साहित्य कौमुदी में नाट्यशास्त्र के प्रमाण से साधारणीकरण का सुसंस्थान हुआ है।

"रतिरस्ति विभावादेः क्वापि साधारणी कृतै।
प्रमाता तदभेदेन स्वं यथा प्रतिपद्यते॥"

साधारणीकरण का अर्थ है– स्व एवं पर सम्बन्ध न होना। श्रीभक्तिरसामृत-सिन्धु (२।५।१०१) की नाट्यशास्त्र श्लोक की टीका में श्रीजीवगोस्वामीपाद का कथन इस प्रकार है–

"मुनि वाक्ये तु भेदांशः स्वयमस्त्येव, इत्यभेदाशं एव तु विभावादेः शक्तिरिति भावः।" किन्तु भरतमुनि के मत में नाट्य रसास्वादक प्रमाता सामाजिक है। दृश्य काव्य का प्रेक्षक ही रसास्वादक होता है। सब व्यक्ति दर्शक व सामाजिक नहीं होते हैं। कारण कहा भी है–

"य स्तुष्टे तुष्टिमायाति शोके शोकमुपैति च।
क्रुद्धः क्रुद्धे भये भीतो सो नाट्ये प्रेक्षकः स्मृतः॥"

इस रीति से श्रव्य काव्य में भी सहृदय श्रोता पाठक सामाजिक होगा, सवासन सभ्य का ही रसास्वादन होगा। हीन व्यक्ति का रसास्वादन नहीं होता है। जिस प्रकार रङ्गमञ्च में काष्ठ प्रभृति का रसोद्‌बोध नहीं होता है। धर्मदत्त ने कहा है–

"निर्वासनानान्तु रङ्गान्तः काष्ठ कुड्यास्म सन्निभाः।"

अभिनवगुप्त का कथन है– **"येषां काव्यानुशीलनवशात् विशदीभूत मनोमुकुरे वर्णनीय तन्मयी भवन योग्यता, ते हृदय संवादभाजः सहृदयाः।"**

आनन्दवर्द्धनाचार्य के मत में – "रसज्ञतैव सहृदयत्वमिति"

अलङ्कार कौस्तुभ (५) में कथित है- **"यदि तु विगलित वेद्यान्तर स्वमनुकर्तृणामपि दृश्यते, तदा तेषामपि सामाजिकत्वमेव, अनुकरणन्तु संस्कार वशादेव जीवन्मुक्तानामाहारविहारादिवत्। सामाजिकानामेव रसः सम्पद्यते।"**

अलङ्कार कौस्तुभस्थ भक्तिरस का उदाहरण–

"जय श्रीमद्‌वृन्दावनमदननन्दात्मजविभौ
प्रियाभीरी वृन्दारिक निखिल वृन्दारक मणे।
चिदानन्दस्यन्दाधिक पदारविन्दासव
नमस्ते गोविन्दाखिल भुवन कन्दाय महते॥"

अत्र देव विषयत्वाच्चेतो रञ्जकता रतिरेव भावः। स एव स्थायी, आलम्बनम् - श्रीकृष्णः, उद्दीपनम् - तन्महिमादि, अनुभावः - हृदय द्रवादि, व्यभिचारी - निर्वेद दैन्यादिः। परोक्षो भक्तानाम्, सामाजिकानान्तु प्रत्यक्षः॥

भक्तिरस निर्णायक गौड़ीय वैष्णवग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(१) श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु — गौड़ीय रस-साहित्य कल्पतरु का सर्वोत्कृष्ट गलित फलस्वरूप असमोर्द्ध रस विज्ञान शास्त्र है। श्रीचैतन्यदेव से शिक्षा प्राप्त श्रीपाद रूपगोस्वामी उक्त ग्रन्थ के प्रणेता हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ सरस एवं विशुद्ध व्रजरीति परिपाटी का उदार प्रदर्शक है, इस ग्रन्थ के तात्पर्यानुसार जीवन प्रणाली नियमित होने से मानव विश्व कीर्त्ति विस्तारी आनन्दवृन्दावन के अमृतमय राज्य में प्रवेशकर सकते हैं। इसमें एकता अनुकूलता, त्याग, समर्पण, सेवाभक्तिरूप उत्तमा चिद्वृत्ति के धर्मकर्मादि का अङ्कन विशेष निपुणता के साथ हुआ है। एकता अनुकूलता भक्तिरूपा चिद्वृत्ति का उद्भव, क्रमविकास एवं चरम परिणति का ईदृश मनोरम सर्वाङ्ग सुन्दर इतिहास अन्यत्र विरल है।

विषय विभाग का नैपुण्य, निर्दोष सरस कवित्व, सूक्ष्म दार्शनिकता मानव समाज में अपरिचित श्रेष्ठतम् मानवता निर्माण के उपाय प्रवर्त्तकत्वादि का एकत्र अवलोकन की अभीप्सा होनेपर, इस ग्रन्थ का अनुशीलन करना एकान्त कर्त्तव्य है।

जो जन मुख्य भागवतीय वैष्णवीय भजन की विशुद्ध भजन प्रणाली को जानने के लिए समुत्सुक हैं, उनके लिए यह ग्रन्थ अवश्य अवलोकनीय है।

अत्यन्त सरस एवं परम पवित्रता की सुदृढ़तम् भित्ति में सुप्रतिष्ठित जो गौड़ीय पद्धति है, जिसमें लौकिकता का गन्ध लेश भी नहीं है। उसका परिज्ञान भी इस ग्रन्थ पाठ से ही होगा।

चित्तवृत्ति को सुशिक्षा के द्वारा सुसंयत करने से ही मानव महान् होता है। प्राथमिक जीवन के असंयत चित्तवृत्ति समूह की किस प्रकार से संयत करके वैधीभक्ति की सहायता से परमादर्श परमप्रिय श्रीमद्भगवच्चरणों में समाकृष्ट करना होता है। शास्त्रीय सुविधान से कैसे चित्त सुनिर्मल होकर उसमें श्रीभगवान्

में प्रीति का उदय होता है, एवं उक्त प्रीति ही कैसे रागानुगा में परिणत होकर सांसारिक विषय वितिष्णा को उत्पन्न करके, श्रीकृष्ण भजन को एकमात्र सुखदकर रूप में अनुभव कराती है, इस ग्रन्थ में इसका सुविस्तृत विवृति है।

अतुलनीया रागानुगा भक्ति कैसे भाव भक्त्यादि में सञ्चारित होती है, कैसे मानव व्रजभाव प्राप्तकरने का अधिकारी होता है। भाव, विभाव, अनुभाव, आदि का स्वरूप समूह साहित्यिक रसशास्त्र में दृष्टि होने पर भी, कैसे मानव अखिल रसामृतमूर्त्ति श्रीभगवान् के भजन पथ में निर्दुष्ट अप्राकृत रसशास्त्र के विषय को लेकर अग्रसर हो सकता है, उन आनन्द लीलामय विग्रह के स्वरूप, गुण का बहुविध परिज्ञान उस ग्रन्थ से होता है। यह ही व्रजभक्ति रस का एकमात्र विज्ञानशास्त्र है।

श्रीकृष्ण एवं एकता अनुकूलतारूप भक्तिरसरूप सम्बन्धि विस्तृत ग्रन्थ पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर रूप में विभाग चतुष्टय हैं।

"स्थायीभावोत्पादन" नामक पूर्व विभाग में – सामान्य, साधन, भाव, प्रेमभक्ति विषयक लहरी चतुष्टय हैं। **"भक्तिरससामान्य निरूपण"** नामक दक्षिण विभाग में – विभाव अनुभाव सात्विक व्यभिचारी एवं स्थायीभाव भेद से पञ्च लहरी हैं। **"मुख्य भक्ति रस निरूपण"** नामक पश्चिम विभाग में – शान्त, प्रीत भक्तिरस अर्थात् दास्य, प्रेयो भक्तिरस अथवा सख्य, वात्सल्य भक्तिरस एवं मधुर भक्तिरस भेद से पञ्च लहरी हैं, तथा **"गौण भक्तिरसादि निरूपण"** नामक उत्तर विभाग में क्रमशः हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक, वीभत्स भक्तिरस, मैत्री वैरी स्थिति, रसाभासरूप नौ लहरी विद्यमान हैं।

२१४१ श्लोकपूर्ण प्रस्तुत ग्रन्थ का रचनाकाल १४६३ है। इसमें तीन टीकाएं हैं– श्रीजीवगोस्वामीकृता '**दुर्गमसङ्गमनी**', श्रीमुकुन्दलाल गोस्वामी कृता '**अर्थरत्नाल्पदीपिका**' तथा श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर कृता '**भक्तिसार प्रदर्शिनी**'।

ग्रन्थोक्त उत्तमा भक्ति का लक्षण–

"अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्म्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥" (पूर्व १/१/११)

प्राचीन भागवत मत में एवं पाञ्चरात्र मत में बीजरूप में निहित सिद्धान्त ही गौड़ीय सिद्धान्त है। प्रमाण स्वरूप में उत्टङ्कित पाञ्चरात्र श्लोक इस प्रकार है–

"सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते॥"

श्रीमद्भागवत (३/२९/१३-१४) श्लोक में उद्धृत हुआ है–

"अहैतुक्यव्यवहिता या भक्ति पुरुषोत्तमे।
सालोक्य सार्ष्टि सारूप्य सामीप्यैकत्वमप्युत॥
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनंजनाः।
स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः॥

भक्तिरसामृत ग्रन्थोक्त भक्ति लक्षण ही निर्दुष्ट है।

नारदीय भक्ति सूत्र–

"सा कस्मैचिद् परमप्रेमरूपा।
सा तु कर्म ज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा॥"

शाण्डिल्य सूत्र – **"सा परानुरक्तिरीश्वरे।"**

तुलना करने से प्रतीत होता है कि – श्रीरूपकृत लक्षण में **'कृष्ण'** शब्द – पाञ्चरात्रोक्त हृषीकेश शब्द, भागवतीय **'पुरुषोत्तम'** शब्द से सर्वाधिक भाव व्यञ्जक है।

एकता अनुकूलता प्रेम लक्षण में कथित है–

"सम्यङ् मसृणित स्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते॥

'सम्यङ् मसृणिता', 'अतिशयाङ्कित' शब्द द्वय पाञ्चरात्रोक्त **'अनन्य ममता', 'सङ्गत ममता'** शब्द की अपेक्षा अधिकतर हृदयग्राही हैं। नारदीय सूत्र – **'कस्मै'** शब्द, शाण्डिल्य सूत्र **'ईश्वर'** शब्द से भी श्रीरूपकृत **'कृष्ण'** शब्द सर्वाधिक स्पष्ट रस व्यञ्जक है।

पाञ्चरात्रोक्त भक्ति लक्षण में उक्त – सेवन शब्द से केवल सेवन का बोध होता है, किन्तु श्रीरूपकृत भक्तिलक्षण में आनुकूल्य शब्द का योग होने से उत्तमाभक्ति लक्षण सर्व्वोत्तमगुण सम्पन्न हुआ है। अवगाहन करने से श्रीरूपगोस्वामीकृत भक्ति लक्षण का माधुर्यानुभव सर्वाधिकरूप से होगा।

श्रीरामानुजाचार्यकृत 'वेदार्थ सार संग्रह' के मोक्षोपाय प्रसङ्ग में उक्त है–

"वर्णाश्रमाचारवतां पुरुषेण परः पुमान्।
विष्णुराराध्यते येन नान्यत्तत्तोष कारणम्॥" (विष्णु पुराण)

किन्तु श्रीचैतन्यदेव के मत में यह सोपान प्रथम है। अतएव गौड़ीय सिद्धान्त निखिल उत्कर्ष मण्डित, व्यावहारिक, जगदुपकारक एवं सर्वभावग्राही है।

उक्त लक्षणाक्रान्त उत्तमाभक्ति के छः वैशिष्ट्य हैं (१/१/१७)

"क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत सुदुर्ल्लभा।
सान्द्रानन्द विशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षिणी च सा॥"

साधनभक्ति का लक्षण करते हुए कहा गया है–

"कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा।
नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता॥" (१/२/२)

वैधी रागानुगा भेद से यह भक्ति द्विविधा है। उत्तम, मध्यम, कनिष्ठाधिकारी भेद से अधिकारी निर्णय के पश्चात् चतुःषष्टि अङ्गों का वर्णन सप्रमाण हुआ है। उक्त अङ्गसमूहों के मध्य में – श्रीमूर्त्तिसेवा, श्रीमद्भागवतार्थास्वाद, साधुसङ्ग, नामसङ्कीर्त्तन तथा श्रीधाम वास मुख्य है।

दुरूहाद्भुतवीर्य्येऽस्मिन श्रद्धादूरेस्तु पञ्चके।
यत्र स्वल्पोऽपि सम्बन्ध सद्धियां भाव जन्मने॥(१/२/२३८)

प्रासङ्गिकरूप में युक्त वैराग्य(१/२/२५५) फल्गु वैराग्य निर्णय, एकाङ्ग अनेकाङ्ग भक्ति साधना की विवृति है।

रागानुगा भक्ति लक्षण–

विराजन्तीमभिव्यक्तं व्रजवासिजनादिषु।
रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते॥ (१/२/२७०)

रागात्मिका भक्ति—

इष्टे स्वारसिकी रागः परमाविष्टता भवेत्।
तन्मयी या भवेद्भक्ति सात्र रागात्मिकोदिता॥ (१/२/२७२)

कामानुगा सम्बन्धानुगा भेद से उक्त रागानुगा भक्तियोग दो प्रकार हैं। व्रजवासि जनादिभाव लुब्ध जन ही उक्त भक्तियोग का अधिकारी है।

तत्तद् भावादि माधुर्ये श्रुते धीर्यदपेक्षते।
नात्र शास्त्रं न युक्तिञ्च तल्लोभोत्पत्ति लक्षणम्॥

रागानुगा परिपाटी—

कृष्णं स्मरण जनञ्चास्य प्रेष्ठं निज समीहितम्।
तत्तत् कथा रतश्चासौ कुर्य्याद्वासं व्रजे सदा॥ (१/२/२९४)

सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि।
तद्भाव लिप्सुना कार्य्या व्रजलोकानुसारतः॥ (१/२/२९५)

भावभक्ति लहरी, भावलक्षण—
शुद्धसत्व विशेषात्मा प्रेम सूर्यांशु साम्यभाक्।
रुचिभिश्चित्तमासृण्य कृदसौ भाव उच्यते॥ (१/३/१)

भावाविर्भाव कारणम्—
साधनाभिनिवेशेन कृष्णतद्भक्तयोस्तथा।
प्रसादेनातिधन्यानां भावो द्वेधाभिजायते॥ (१/३/६)

भावाविर्भाव लक्षण—
क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता।
आशाबन्ध समुत्कण्ठा नामगाने सदारुचिः॥
आसक्तिस्तद्गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसतिस्थले।
इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जातभावाङ्कुरे जने॥ (१/३/२५,२६)

प्रेमभक्ति लहरी में प्रेम लक्षण—

सम्यङ् मसृणित स्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः।
भाव स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते॥ (१/४/१)

प्रेमेदं भावोत्थं श्रीहरिप्रसादोत्थं चेति द्विधा भिद्यते॥

प्रेमोदय का क्रम—

आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थ निवृत्तिः स्यात्ततोनिष्ठा रुचिस्ततः॥
अथासक्तिस्ततोभावस्ततःप्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥ (१/४-१५,१६)

साधकदेह में साधारण प्रेमाविर्भाव पर्यन्त होता है। प्रेमविलास रूप स्नेहादि का आविर्भाव नहीं होता है। अतः स्नेह मानादि का वर्णन भक्तिरसामृतसिन्धु में नहीं है। उज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थ में हुआ है।

दक्षिण विभाग में—

(१) विभाव लहरी— विषयालम्बन श्रीकृष्ण के ६४ गुण समूह (२/१/२३-४३), पूर्ण, पूर्णतर, पूर्णतम भेद से (२/१/२२१-२२३) धीरोदात्त, धीरललित, धीरोद्धत, धीरप्रशान्त भेद (२/१/२२४-२३८) शोभाविलासादि आश्रयगुण (२/१/२५२-२७१) सहाय (२/१/२७२) शान्त, दास, सखा, गुरु, प्रेयसी भेद से पञ्चविध भक्त (२/१/३००) उद्दीपन विभाव, गुण-चेष्टा प्रसाधनादि (२/१/३०१-३८४)।

(२) अनुभाव लहरी— अनुभावाः चित्तस्थभावानामवबोधकाः। (२/२/१)। नृत्यं विलुठित गीतादि।

(३) सात्विक लहरी— स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च प्रभृति अष्टविध सात्विक, स्निग्ध दिग्ध व रुक्ष भेद से त्रिविध हैं।

(४) व्यभिचारी लहरी— निर्वेद विषाद दैन्यादि त्रयत्रिंशत।

(५) स्थायीभाव लहरी— अविरुद्धान् विरुद्धांश्च भावां यो वसतां नयन्।
सुराजेव विराजेत सा स्थायीभाव उच्यते।
स्थायीभावोत्र स प्रोक्तः श्रीकृष्णविषयारतिः॥

मुख्य गौण भेद से दो प्रकार प्रीति, सख्य, वात्सल्य, प्रियतारूप पञ्च मुख्य तथा हास विस्मयोत्साह शोक-क्रोध-भय- जुगुप्सा भेद से गौण सात हैं।

पश्चिम विभाग में –

(१) शान्त, (२) प्रीत, (३) प्रेयो, (४) वत्सल, (५) मधुरभक्तिरस का विभेद वर्णन है।

उत्तर विभाग में–

हास्यादि सप्त गौण भक्तिरस, परस्पर मित्र वैरीस्थिति, रसाभास का वर्णन है।

उज्ज्वलनीलमणिग्रन्थ अखिलरसामृतमूर्त्ति श्रीकृष्ण का उज्ज्वलरस विज्ञानशास्त्र है। इसमें नायक-नायिकादि भेदादि शृङ्गाररस का विस्तृत वर्णन है।

अहोऽतिधन्या व्रज गोरमण्यः स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा।
यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेऽद्यापि चालमध्वराः॥

(श्री० भा० १०. १४. ३१.)

मेरे स्वामी! जगत् के बड़े-बड़े यज्ञ सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर अब तक आपको पूर्णतः तृप्त न कर सके। परन्तु आपने ब्रज की गायों और ग्वालिनों के बछड़े एवं बालक बनकर उनके स्तनों का अमृत सा दूध बड़े उमंग से पिया है। वास्तव में उन्हीं का जीवन सफल है, वे ही अत्यन्त धन्य हैं।

श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन् क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन्।
उद्धर्मशार्वरहर क्षितिराक्षसध्रुगाकल्पमार्कमर्हन् भगवन् नमस्ते॥

(श्री० भा० १०. १४.४०.)

सबके मन-प्राण को अपनी रूप-माधुरी से आकर्षित करने वाले श्यामसुन्दर! आप यदुवंश रूपी कमल को विकसित करने वाले सूर्य हैं। प्रभो! पृथ्वी, देवता, ब्राह्मण और पशुरूप समुद्र की अभिवृद्धि करने वाले चन्द्रमा भी आप ही हैं। आप पाखण्डियों के धर्मरूप रात्रि का घोर अंधकार नष्ट करने के लिए सूर्य और चन्द्रामा दोनों के ही समान हैं। पृथ्वी पर रहने वाले राक्षसों को नष्ट करने वाले आप चन्द्रमा, सूर्य आदि समस्त देवताओं के भी परम पूजनीय हैं। भगवन्! मैं अपने जीवनभर, महाकल्पपर्यन्त आपको नमस्कार ही करता रहूँ।

卐

श्रीहरिदास शास्त्री सम्पादिता ग्रन्थावली

क्रम सद्ग्रन्थ	मूल्य
१-वेदान्तदर्शनम् भागवतभाष्योपेतम्	१५०.००
२-श्रीनृसिंह चतुर्दशी	१०.००
३-श्रीसाधनामृतचन्द्रिका	२०.००
४-श्रीगौरगोविन्दार्चनपद्धति	२०.००
५-श्रीराधाकृष्णार्चनदीपिका	२०.००
६-७-८-श्रीगोविन्दलीलामृतम्	४५०.००
९-ऐश्वर्यकादम्बिनी	३०.००
१०-श्रीसंकल्पकल्पद्रुम	३०.००
११-१२-चतुःश्लोकीभाष्यम्, श्रीकृष्णभजनामृत	३०.००
१३-प्रेम सम्पुट	४०.००
१४-श्रीभगवद्भक्तिसार समुच्चय	३०.००
१५-ब्रजरीतिचिन्तामणि	४०.००
१६-श्रीगोविन्दवृन्दावनम्	३०.००
१७-श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश	५०.००
१८-श्रीहरेकृष्णमहामन्त्र	५.००
१९-श्रीहरिभक्तिसारसंग्रह	५०.००
२०-धर्मसंग्रह	५०.००
२१-श्रीचैतन्यसूक्तिसुधाकर	१०.००
२२-श्रीनामामृतसमुद्र	१०.००
२३-सनत्कुमारसंहिता	२०.००
२४-श्रुतिस्तुति व्याख्या	१००.००

२५-रासप्रबन्ध	३०.००
२६-दिनचन्द्रिका	२०.००
२७-श्रीसाधनदीपिका	६०.००
२८-स्वकीयात्वनिरास, परकीयात्वनिरूपणम्	१००.००
२६-श्रीराधारससुधानिधि (मूल)	२०.००
३०-श्रीराधारससुधानिधि (सानुवाद)	१००.००
३१-श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम्	३०.००
३२-श्रीगौरांग चन्द्रोदय	३०.००
३३-श्रीब्रह्मसंहिता	५०.००
३४-भक्तिचन्द्रिका	३०.००
३५-प्रमेयरत्नावली एवं नवरत्न	५०.००
३६-वेदान्तस्यमन्तक	४०.००
३७-तत्वसन्दर्भः	१००.००
३८-भगवत्सन्दर्भः	१५०.००
३६-परमात्मसन्दर्भः	२००.००
४०-कृष्णसन्दर्भः	२५०.००
४१-भक्तिसन्दर्भः	३००.००
४२-प्रीतिसन्दर्भः	३००.००
४३-दशःश्लोकी भाष्यम्	६०.००
४४-भक्तिरसामृतशेष	१००.००
४५-श्रीचैतन्यभागवत	२००.००
४६-श्रीचैतन्यचरितामृतमहाकाव्यम्	१५०.००
४७-श्रीचैतन्यमंगल	१५०.००
४८-श्रीगौरांगविरुदावली	४०.००

४६-श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृत	१५०.००
५०-सत्संगम्	५०.००
५१-नित्यकृत्यप्रकरणम्	५०.००
५२-श्रीमद्‌भागवत प्रथम श्लोक	३०.००
५३-श्रीगायत्री व्याख्याविवृतिः	१०.००
५४-श्रीहरिनामामृत व्याकरणम्	२५०.००
५५-श्रीकृष्णजन्मतिथिविधिः	३०.००
५६-५७-५८-श्रीहरिभक्तिविलासः	६००.००
५९-काव्यकौस्तुभः	१००.००
६०-श्रीचैतन्यचरितामृत	२५०.००
६१-अलंकारकौस्तुभ	२५०.००
६२-श्रीगौरांगलीलामृतम्	३०.००
६३-शिक्षाष्टकम्	१०.००
६४-संक्षेप श्रीहरिनामामृत व्याकरणम्	८०.००
६५-प्रयुक्ताख्यात मंजरी	२०.००
६६-छन्दो कौस्तुभ	५०.००
६७-हिन्दुधर्मरहस्यम् वा सर्वधर्मसमन्वयः	५०.००
६८-साहित्य कौमुदी	१००.००
६९-गोसेवा	४०.००
७०-गोसेवा (गोमांसादि भक्षण विधि-निषेध विवेचन)	५०.००
७१-पवित्र गो	५०.००
७२-रस विवेचनम्	५०.००
७३-मन्त्र भागवत	
७४-अहिंसा परमोधर्मः	

बंगाक्षर में मुद्रित ग्रन्थ

१-श्रीबलभद्रसहस्रनाम स्तोत्रम्	१०.००
२-दुर्लभसार	१०.००
३-साधकोल्लास	५०.००
४-भक्तिचन्द्रिका	४०.००
५-श्रीराधारससुधानिधि (मूल)	२०.००
६-श्रीराधारससुधानिधि (सानुवाद)	३०.००
७-श्रीभगवद्भक्तिसार समुच्चय	३०.००
८-भक्तिसर्वस्व	३०.००
९-मन:शिक्षा	३०.००
१०-पदावली	३०.००
११-साधनामृतचन्द्रिका	४०.००
१२-भक्तिसंगीतलहरी	२०.००

अंग्रेजी भाषा में मुद्रित ग्रन्थ

१–पद्यावली (Padyavali)	२००.००
२–गोसेवा (Goseva)	५०.००
३–The Pavitra Go	८०.००
४–A Review of 'Beef in Ancient India'	२००.००
५–Scriptural Prohibitions on meat-eating	१००.००

❖